बापूकी विराट् वत्सलता

काशिनाथ त्रिवेदी

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर
अहमदाबाद – १४

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाई देसाई
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदावाद–१४

पहला संस्करण ३०००

रु० १.००

अनुक्रमणिका

बापूके ये संस्मरण

विद्यार्थी-अवस्थामें मैंने पहले-पहल सन् १९२५ में हिन्दी पुस्तक एजन्सी, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित 'यंग इंडिया' नामक पुस्तकके कई खण्ड पढकर बापूकी विचारधाराका परिचय पाया। १ जनवरी, १९२९ को मैं 'हिन्दी नवजीवन' के कामसे उनकी सेवामें साबरमती-आश्रम पहुचा। सितम्बर १९३१ तक वहा रहा। फिर १९३६ से १९४० तक मुझे वर्धाके महिला-आश्रममें काम करनेका अवसर मिला। उस समय भी बापूके सम्पर्कमें आनेका लाभ बीच-बीचमें मिलता रहा। सन् १९४१–'४२ और १९४६–'४७ में मैंने उनके साप्ताहिक 'हरिजनसेवक' का काम भी किया। इस बीच उनको दूर-पाससे देखने-समझनेके अनेक अवसर मिले। उनके बहुत निकट रहने और काम करनेका लाभ तो मैं नही पा सका। पर सौभाग्यवश उनके सान्निध्य और सम्पर्कका जो भी लाभ मिला, उसीके आधार पर उनके सम्बन्धमें अपने जो सस्मरण मैंने समय-समय पर पिछले वर्षोंमें लिखे थे, उनके साथ हाल ही लिखे हुए कुछ नये सस्मरणोको मिलाकर इस छोटी पुस्तककी सामग्री सकलित की गई है।

इन सस्मरणोंमें अधिकाश ऐसे है, जिनका साक्षी मैं किसी न किसी निमित्तसे रहा हू। कुछ ऐसे भी हैं, जिनकी अमिट छाप मेरे मन पर रह गई है। मुझे विश्वास है कि अपने इस रूपमें ये पाठकोको रुचेंगे और वे इन्हे न केवल स्वय चावसे पढ़ेंगे, बल्कि दूसरोको भी उतने ही चावसे सुनाना पसन्द करेंगे और इनमें बापूके जीवनकी महानता तथा विराटताके जो दर्शन होते हैं, उनसे अनुप्राणित हो सकेंगे।

इन सस्मरणोंमें कई ऐसे हैं, जिनमें हमें बापूके विराट् वात्सल्यके दर्शन होते है। इसलिए पुस्तकका नाम 'बापूकी विराट् वत्सलता' रखनेकी प्रेरणा हुई है। नेता, महात्मा, सत्याग्रही, सुधारक, सेवक,

क्रांतिकारी, लेखक, विचारक आदि-आदि अनेक रूपोंमें बापूने अपने जीवन-कालमें महान काम किये हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे इस युगमें बापू ही अपने समयके सबसे बड़े लोकसंग्रही रहे। उनके जैसा विश्वव्यापी लोक-संग्रह इस युगके किसी महापुरुषने शायद ही कहीं किया हो। उन्होंने न केवल अपने निकटके लोगोंको अपनी आत्मीयताका लाभ दिया, बल्कि दूर-दूरके अज्ञात और अपरिचित साथियोंको भी उन्होंने अपना ही माना और अपने वात्सल्यकी धारासे उनको सतत अभिषिक्त किया। बापूने अपनेमें माता-पिता दोनोंके उत्तम गुणोंका सुभग विकास किया था। यही कारण था कि वे सारे संसारको अपने वात्सल्यका दान इतने मुक्त रूपसे कर सके। मेरे मन पर उनके इस वात्सल्यकी अमिट छाप अंकित हो चुकी है। मेरे-जैसे हजारों-लाखोंने उनसे भर-भर कर वात्सल्य पाया है। इसलिए मैंने पाठकोंके सम्मुख उनके इसी महान गुणकी चर्चा करनेवाले कुछ संस्मरण प्रस्तुत करनेका साहस किया है।

इन संस्मरणोंमें से कई गुजरातीके 'बालमित्र' और हिन्दीके 'नई तालीम', 'जीवन-साहित्य', 'भूमिक्रान्ति' आदि पत्रोंमें समय-समय पर छप चुके हैं। अब ये संस्मरण नवजीवन ट्रस्टके व्यवस्थापक-ट्रस्टी श्री ठाकोरभाई देसाईकी स्वीकृतिसे बापूकी ९६वीं जयन्तीके शुभ अवसर पर पुस्तक रूपमें प्रकाशित हो रहे हैं। इन्हें इस रूपमें प्रकाशित करनेमें जिन जिनका सहज सहयोग प्राप्त हुआ है, उन सबका मैं इस अवसर पर सादर सस्नेह स्मरण करता हूं।

इन संस्मरणोंमें स्मृतिदोष या अन्य कारणोंसे घटनाओं और तथ्योंसे सम्बन्ध रखनेवाली कोई त्रुटियां पाठकोंके ध्यानमें आयें, तो वे लेखकको उनकी सही जानकारी भेज कर अनुगृहीत करें। इससे पुस्तकके अगले संस्करणमें आवश्यक संशोधन करना सुविधाजनक होगा।

काशिनाथ त्रिवेदी
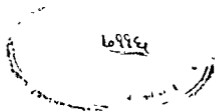
गांधी-आश्रम, [illegible]
[illegible]

बापूकी विराट् वत्सलता

१

वात्सल्य-मूर्ति बापू

सन् १९२५ का साल। गरमीके दिन। खण्डवाके साप्ताहिक 'कर्मवीर' का कार्यालय। 'श्रीगौड़-हितैषी' नामक एक मासिकके कुछ अंकोंकी छपाईके लिए मैं लगातार कई हफ्तों वहा रहा। वहीं पहली बार गांधीजीकी अक्षर-देहसे मेरा परिचय हुआ। हिन्दी पुस्तक-एजन्सी, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित 'यंग इण्डिया' पुस्तकके सब खण्ड मैंने वहीं पहले-पहल बड़ी रुचिके साथ पढ़े। इन पुस्तकोंको पढ़कर मैं गांधी-विचारकी ओर झुका। गांधीजीके जीवन-दर्शनने मुझे प्रभावित और प्रेरित किया। तभीसे मैं उनके पथ पर चलनेके सपने देखने लगा। मैंने खादी पहननी शुरू की। चरखा चलाना सीखा। इस प्रकार अपने जीवनके १९ वें वर्षमें मैंने स्वयं स्वेच्छासे गांधीका अनुगामी बननेका निश्चय किया।

उन दिनों मैं इन्दौरके क्रिश्चियन कॉलेजमें इण्टरका विद्यार्थी था। १९२८ में बी० ए० की परीक्षा देकर मैं तुरन्त अजमेर चला गया। दिसम्बर, १९२८ तक वहां 'त्यागभूमि' के सम्पादक-मण्डलमें काम करता रहा। १ जनवरी, १९२९ को मैं 'हिन्दी नवजीवन' के सहायक सम्पादकका काम करनेके लिए साबरमती आश्रम पहुंचा। वहीं उस दिन जीवनमें पहली बार गांधीजीके दर्शन किये। बरसोंकी मेरी एक साध पूरी हुई। मैं कृतार्थ हुआ। बापूके आशीर्वाद लेकर मैं अपने

काममें लग गया। हफ्तेमें तीन दिन मैं 'हिन्दी नवजीवन' काम करता था और बाकीके दिनोंमें आश्रममें रहनेवाले गुजरा मराठी, बंगला, तमिल, तेलुगु, मलयालम आदि भाषा-भा भाई-बहनोंको हिन्दी सिखाता था।

उन दिनों जनवरी, १९२९ से सितम्बर, १९३१ तक मैं गांधीजीके आश्रममें रहा। २९ का साल गांधीजीके जीवनका बड़ा ही व्यस्त साल सिद्ध हुआ। उस साल देशके अलग-अलग प्रान्तोंमें उनकी लम्बी यात्रायें चलती रहीं। उनका अधिकतर समय आश्रमके बाहर बीता। बीच-बीचमें वे कुछ दिनोंके लिए आश्रममें आते और हम आश्रमवासियोंको नित नई प्रेरणायें देकर एक ओर हमें देशके दरिद्रनारायणोंकी सेवाके लिए तैयार होनेकी सलाह देते और दूसरी ओर देशको दासतासे मुक्त करनेकी युक्तियां सुझाते। अपने आश्रम-निवासके दिनोंमें गांधीजी बच्चोंसे लेकर बूढ़ों तक सबके पास पहुंचनेका आग्रह रखते। सबको अपने विचारोंकी दीक्षा देते और जो जिस लायक होता, उससे वैसा काम ले लेते। इस कलामें वे बहुत ही निपुण थे। जो एक बार उनके सम्पर्कमें आया, वह फिर सदाके लिए उन्हींका होकर रह गया। जो उनसे बिछुड़कर दूर गया, उसे भी उन्होंने अपना ही माना। उनके जैसा लोक-संग्रह दुनियामें आज तक शायद ही किसीने किया हो! भगवानने उन्हें बहुत बड़ा दिल दिया था। उसमें न सिर्फ समूचा मानव-समाज समा गया था, बल्कि जड़-चेतन सारी सृष्टि भी समाई हुई थी। तुलसीदासजीकी इन पंक्तियोंको उन्होंने अपने जीवन और कार्य द्वारा अक्षरशः चरितार्थ किया था :

जड़-चेतन जग जीव जत, सकल राममय जानि।
बन्दौं सबके पदकमल, सदा जोरि जुग पानि ॥

गांधीजी अपने परिचयमें आनेवाले नये साथियोंको शुरूमें अपना भाई-बहन समझते। फिर जब परिचय घना हो जाता, निकटता बढ़ जाती, तो वे उन्हें पुत्र-पुत्री-वत् मानने लगते। उनका विशाल पत्र-व्यवहार इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। शुरूमें जिसे उन्होंने 'भाई' या 'बहन' लिखा, वही कुछ समयके बाद 'चिरंजीव' शब्दका अधिकारी बन गया। उनके इस विराट् वात्सल्यकी प्रसादी जिस किसीने भी पाई, समझ लीजिये कि उसे अपने जीवनकी एक अनमोल निधि और थाती मिल गई!

*

३१ दिसम्बर, १९२९ की आधी रातको राष्ट्रने लाहौरमें रावीके किनारे देशके लिए सम्पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करनेका महान संकल्प किया। २६ जनवरी, १९३० को सारे देशमें पहला स्वातंत्र्य-दिन मनाया गया। १२ मार्च, १९३० को गांधीजीने राष्ट्रको स्वतंत्र करनेकी भीष्म प्रतिज्ञाके साथ साबरमतीसे दांडी तककी अपनी अपूर्व और ऐतिहासिक पदयात्रा शुरू की। इसीके साथ वे देशको नमक-सत्याग्रहके लिए भी तैयार करते चले गये। ६ अप्रैल, १९३० के दिन दांडीमें गांधीजीने नमकका कानून तोड़ा और तुरन्त ही सारे देशमें सत्याग्रहकी धूम मच गई।

*

मई, १९३० की एक रात। कराड़ीकी कुटियामें गांधीजी गिरफ्तार किये गये और सरकारने उन्हें पूनाके पास यरवड़ाके

केन्द्रीय कारागारमें बन्द कर दिया। लगभग सवा बरस तक गांधीजी बन्दी बने रहे। जेलको महल और मन्दिर माननेवाले गांधीजी यरवड़ा-मन्दिरमें बैठे-बैठे अपने जीवनकी गहन और महान साधना करते रहे और अपने चिन्तन-मननकी प्रसादी अपने साथियों तक हर हफ्ते अपने हाथों लिखे पत्रों द्वारा लगातार पहुंचाते रहे। इन पत्रोंमें गांधीजीका जो रूप प्रकट हुआ है, वह उनकी विराट् वत्सलताका एक अद्भुत नमूना है। गागरमें सागरकी तरह उनके नपे-तुले शब्दोंवाले उन पत्रोंमें जो प्राण, जो प्रेरणा, जो आवाहन और जो आत्मानुभूति रहती थी, उसका वर्णन करना कठिन है। मेरे निजी संग्रहमें उन दिनोंके लिखे गांधीजीके ऐसे छोटे-बड़े ५३ पत्र हैं। ये पत्र मेरे नाम, मेरी पत्नीके नाम, मेरी एक बहन और छोटे भाईके नाम लिखे गये हैं। इन पत्रोंके कारण हमारे जीवनमें गांधीजीके साथकी जो मधुर और पावन स्मृतियां अमिट रूपसे जुड़ी हुई हैं, उन्हें एक शब्दमें 'अनमोल' ही कहा जा सकता है। लीजिये, गांधीजीके उन पत्रोंके ये कुछ प्रसंग पढ़िये।

सन् १९३१ की बात है। खेड़ा जिलेके बोरसद नगरमें आश्रमकी बहनोंके नेतृत्वमें सत्याग्रही बहनोंका एक भारी जुलूस निकला। उन पर पुलिसकी लाठियां बरसीं। बड़ा अत्याचार हुआ। कई बहनें घायल हो गईं। पुलिसने चोटियां पकड़कर बहनोंको सड़कों पर घसीटा। सारे गुजरातमें हाहाकार मच गया। बापूने जब उसकी खबर जेलमें पढ़ी तो [illegible] बहनों पर मार पड़ी थी, जो [illegible]

बापूको भेजे गये। उन्होंने जेलसे बहनोंके नाम सांत्वना, प्रेरणा और प्रोत्साहनसे भरे जो पत्र भेजे, उनमें दो वाक्योंका एक बहुत छोटा पत्र मेरी पत्नीके नाम भी था। लिखा था:

चि० कलावती,

तुमने अच्छी बहादुरी बताई है। मुझको पूरा बयान भेज दो।

२–२–'३१ बापूके आशीर्वाद

सिर्फ १० शब्दोंके इस पत्रमें बापूने उस समय जो अटूट प्रेरणा भर दी थी, उसका तो न कोई मोल हो सकता है, न तोल।

जिन दिनों गांधीजी जेलमें थे, मैं अपनी माताजी और छोटे भाई-बहनोंको आश्रममें ले गया था। जेलमें बैठे-बैठे गांधीजीने उनके जीवनमें जो गहरी रुचि ली, उसके कुछ नमूने यों हैं:

२–११–'३० को यरवडा-मन्दिरसे लिखे अपने पत्रमें उन्होंने सात सालके मेरे छोटे भाईको लिखा:

चि० रामचन्द्र,

तुम्हारा खत देखकर मुझे आनन्द हुआ। तुम्हारी उमरके लड़के बहुत अच्छा सूत कातते हैं, गीता-पाठ करते हैं, रामायण समझते हैं। तुम क्या पढ़ते हो? घंटेमें कितना कातते हो? सूतका अंक क्या है?

बापूके आशीर्वाद

भाईके नाम लिखे दूसरे एक पत्रमें छुआछूत मिटानेकी चर्चा करके उन्होंने अपने मिशनके प्रति जो जागरूकता और सजगता दिखाई है, वह अनुकरणीय और सराहनीय है। लिखते हैं:

चि० रामचन्द्र,

तुमने दस्तखत नहीं दिये हैं, पर तुम्हारा ही खत है। तुमने अच्छे अक्षर लिखनेका ठीक प्रयत्न किया है। ऐसे ही करते रहो। जीजीसे कहो, धर्म-पालनमें पिताजीकी प्रसन्नता-अप्रसन्नताका प्रश्न रहता ही नहीं। अन्तमें धर्म-पालनसे सब प्रसन्न हो जाते हैं। मीराबाईका दृष्टान्त हमारे सामने ही है। छुआछूतको जीजी यदि पाप समझती हैं, और समझना चाहिये, तो उसे छोड़ दें।

रविवार, बापूके आशीर्वाद

१७–१०–'३० के अपने पत्रमें बापूने मेरी पत्नीको निश्चयकी दृढ़ताका महत्त्व समझाते हुए लिखा:

चि० कलावती,

बहुत दिनोंके बाद तुम्हारा खत मिला। हमें ऐसी आदत रखनी चाहिये, जिससे अच्छा, बुरा (कुछ) न लगे। कर्तव्यके कारण कहीं भी रहना पड़े, अच्छा ही मानना। जिसे सेवा करनी है, उसको अच्छा क्या, बुरा क्या? लोक-चर्चासे डरना नहीं। अपने निश्चय पर कायम रहना। धर्म-पालन वही स्त्री कर सकती है, जो फांसी पर भी अपने निश्चयको न तोड़े। मुझको लिखा करो।

बापूके आशीर्वाद

उन्हीं दिनों मेरे एक पत्रके उत्तरमें २७-९-'३० को बापूने मुझे जो लिखा, वह आज भी हम सबके लिए उतना ही मननीय और आचरणीय है।

चि० काशीनाथ,

तुम्हारे दोनों पत्र मिले है। कलावतीकी प्रगति बहुत अच्छी हुई है। खद्दरके बारेमें स्वावलम्बन-पद्धति-ग्रहणका निश्चय ठीक किया। स्वप्नदोषका निवारण अल्पाहार और शारीरिक और मानसिक उद्यम है। जो शारीरिक कार्य किया जाय, उसीमें मनको रोक लेनेसे दुगुना लाभ होता है। कार्य ज्यादा अच्छा होता है, मनोविकार ऐसे ही रुक जाते हैं।

बापूके आशीर्वाद

मेरी एक छोटी बहन उन दिनों अस्वस्थ थी और एक अरसेसे बड़े मानसिक संघर्षमें से गुजर रही थी। बापूने उसे लिखा:

चि० शान्ता,

तुमको मैंने पत्र तो लिखा है। और क्या लिखूं? तुम्हारी परीक्षा हो रही है। बहादुरीसे रहो।
७-१-'३१ बापूके आशीर्वाद

१७-१-'३१ को बापूने पुनः उसी बहनको नीचे लिखा पत्र भेजा:

चि० शान्ता,

तुम्हारा खत मिला। हिम्मत रखो और दृढ़ रहो। तुम्हारे सामने अच्छी समस्या है। स्त्री-वर्गकी प्रार्थनाके श्लोकोंका अच्छी तरह मनन करो। उनके माने समझ लेना।

बापूके आशीर्वाद

परम कृपालु परमात्माकी असीम कृपा और दयासे हमें अपने जीवनके आरम्भमें गांधीजी-जैसे राष्ट्रपिताकी वत्सलता-पूर्ण शीतल, प्रेरक और पावन छायामें जीनेका और उनके कठोर अनुशासन तथा उदार व्यवहारका इतने निकटसे और इतने लम्बे समय तक लाभ उठानेका जो दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हुआ, वह हमारे जीवनकी एक अनूठी और अनमोल कमाई ही रही।

वचनके पक्के

सन् १९२९ की बात है। उन दिनों बापू साबरमती आश्रममें रहते थे। आश्रमके पड़ोसमें श्री बुधाभाईके कुछ मकान थे। किराये पर उठा रखे थे। उन्हींमें से एकमें श्री भगवानजीभाई रहते थे। वे थे, उनकी विधवा भाभी थीं और भाभीके कुछ बच्चे थे। भगवानजीभाई प्रोफेसर रह चुके थे। विद्वान भी बड़े थे। ऑक्सफर्डकी एम० ए० परीक्षा अंग्रेजीमें [illegible] नम्बरोंसे पास कर चुके थे। उन्होंने बापूके नवजीवन

कार्यालयमें भी काम किया था। वे साबरमती आश्रममें भी रहे थे। और आश्रमकी राष्ट्रीय शालाके एक शिक्षक भी रह चुके थे।

सन् १९२९ में उन्होंने आश्रमके पासवाले अपने घरमें उपवास करना शुरू किया। मनमें एक विचार आया। थोड़ा मन्थन-चिन्तन चला। फिर निश्चय हुआ और उपवास शुरू हो गये। बापू उन दिनों आश्रममें नहीं थे। वे देशमें कहीं घूम रहे थे। इधर आश्रमके पड़ोसमें श्री भणसालीभाईके उपवास चल रहे थे। हफ्ता बीता, दो हफ्ते बीते, तीन हफ्ते बीते, महीना बीत गया, पर भणसालीभाईका उपवास न टूटा। आश्रममें इसके कारण सभी कोई चिंतित थे। भणसालीभाई उन दिनों आश्रमवासी नहीं थे। फिर भी आश्रमवाले सब उन्हें अपना साथी और भाई समझते थे। उनकी बहुत इज्जत करते थे। सवा महीना हुआ, डेढ महीना होने आया। लोग परेशान हुए। उधर भणसालीभाई भी दिनोदिन कमजोर होने लगे। समझानेवाले समझाते थे, पर भणसालीभाई उपवास छोड़नेको राजी नहीं होते थे। सब कोई कहने लगे कि अब तो बापू आवें और समझावें तभी भणसालीभाई समझेंगे।

संयोगसे कुछ ही दिनों बाद बापू अपने दौरेका एक दौर पूरा करके साबरमती लौटे। भणसालीभाई उस समय तक पचाससे अधिक दिनके उपवास कर चुके थे। बहुत कमजोर हो गये थे। पर मनसे प्रसन्न और स्वस्थ थे। जैसे ही बापू आश्रममें आये और उन्हें भणसालीभाईकी हालतका पता चला, वे उनसे मिलने गये। उन्हें समझाया। चर्चा की। बात गले

उतारी और भणसालीभाई उपवास छोड़नेको तैयार हो गये। पचपनवें दिन वापूके हाथों फलका रस लेकर उन्होंने अपने लम्वे उपवासका पारणा किया !

छोटे-बड़े सबके मन स्वस्थ हुए। सबने छुटकारेकी सांस ली और मन ही मन भगवानको धन्यवाद दिया।

उस दिन आश्रममें सब खुश थे। लेकिन यह खुशी ज्यादा दिन तक टिक नहीं पाई। दूसरे ही दिन पता चला कि भणसालीभाईकी तवीयत बहुत बिगड़ गयी है और अब वे घड़ी-दो घड़ीके ही मेहमान मालूम होते हैं। सौभाग्यसे वापू आश्रममें थे। उन्होंने तुरन्त भणसालीभाईके इलाजकी उत्तम व्यवस्था करवाई। अहमदावादके अच्छेसे अच्छे डॉक्टर वुलवाये गये। उन्होंने भी जी-जानसे मेहनत की। वापूने अपनी देखरेखमें सारा प्रवन्ध कराया। आश्रमके कुछ साथी रोगीकी सेवा-चाकरीके लिए चौवीसों घंटे हाजिर रहने लगे। सबके मन उदास और परेशान थे। सब चाहते और मनाते थे कि भणसालीभाई अपनी इस वीमारीको काटकर जल्दी ही उठ खड़े हों और भले-चंगे वन जायें ! आखिर भगवानने सबकी सुनी। भणसालीभाई अपनी वीमारी पर विजय पाकर खतरेसे वाहर हो गये। सबकी जानमें जान आई। सबने भगवानकी जय मनाई।

पर अभी एक कसौटी और वाकी थी। वीमारी चली गई। खतरा मिट गया। भणसालीभाई स्वस्थ होने लगे। पर उनमें एक नई चीज पैदा हो गई। वे पुराना सब कुछ भूल गये। लिखना, पढ़ना, जाना, पहचानना, सब उनके ध्यानमें

उतर गया। दिमागमें एक तरहका सूनापन पैदा हो गया। इस नई चीजने सबको पुनः परेशानीमें डाल दिया।

इतनेमें फिर बापूके लिए दौरे पर जानेका समय आ पहुंचा। बापूने भणसालीभाईको उपवासवाली जगहसे हटाकर आश्रममें बुला लिया। वहां उनके पथ्य-परहेज और सेवा-चाकरीका पूरा प्रबन्ध कर दिया। फिर जब आश्रमसे जाने लगे, तो भणसालीभाईसे मिलने और विदा लेने गये। बापूने उन्हें हिम्मत बंधाई और कहा: "अब जल्दी ही अपनी तबीयत सुधार लो और चंगे हो जाओ। मन पर किसी बातका बोझ मत रखो। खुश रहो और भगवानका भजन करो।"

भणसालीभाईने बापूको प्रणाम किया। उनका गला रुंधा हुआ था। आंखें सजल थीं। उन्होंने बापूसे एक 'वर' मांग लिया। बोले: "आप इस दौरेमें जहां कहीं भी रहें, मेरे नाम रोज एक पत्र अपने हाथका लिखा जरूर भेजें। मुझे उससे बड़ी तसल्ली मिलेगी।"

बापूने कहा: "बस, इतनी-सी बात! अच्छा, तो ऐसा ही होगा।"

और बापू आश्रमसे संयुक्त प्रान्तके दौरे पर रवाना हो गये।

सन् १९२९ के अगस्त-सितम्बरकी यह बात है। बापू उन दिनों लगातार दो-ढाई महीनों तक संयुक्त प्रान्तके अलग-अलग जिलोंमें घूमे थे। जब तक घूमकर साबरमती वापस

नहीं लौटे, हर दिन भणसालीभाईके नाम अपने हाथसे एक पत्र लिखकर बिला-नागा डाकमें डलवाते रहे। इस तरह बापूने अपने उस तूफानी दौरेके दिनोंमें भी भणसालीभाईको साठसे ऊपर पत्र लिखे। पत्र सभी गुजरातीमें थे। जब कभी बापू बहुत व्यस्त रहे या खास कुछ लिखनेको न हुआ, तो उन्होंने सिर्फ एक पंक्तिमें इतना ही लिखकर कि "तुम्हारी याद कर रहा हूं।" पत्र डाकमें छुड़वा दिया!

अपने साथीका दिल रखने और दिये हुए वचनको पालनेका बापू कितना खयाल रखते थे, इसकी एक जीती-जागती मिसाल बापूका यह पत्र-व्यवहार है।

बापू धन्य थे, और धन्य हैं उनके वे साथी, जो उनका इतना प्रेम और प्रसाद पा सके!

३

'ईश्वरकी चीज'

गांधीजीका आश्रम साधु-सन्तोंका कोई अखाड़ा नहीं था। वह स्वराज्यके साधकों और सत्यके उपासकोंका आश्रम था। इस आश्रमके अपने कुछ नियम थे और कुछ व्रत थे। हरएक आश्रमवासीके लिए ग्यारह व्रतोंका पालन आवश्यक था। इन व्रतोंमें एक व्रत अपरिग्रहका भी था। परिग्रहका मतलब है संग्रह। जरूरती और जिनकी जरूरत नहीं है, ऐसी सब तरहकी चीजोंको बोझरूप अपने आसपास बटोरकर रखना परिग्रह कहलाता है। जिनका काम दो धोतियों, दो कुर्तों

और दो टोपियोंसे चल सकता है, वे जब अपने पास १० धोतियां, १० कुर्ते और १० टोपियां रखते हैं, तो परिग्रही कहलाते हैं। गांधीजीने अपने आश्रममें ऐसे सब प्रकारके परिग्रहकी मनाही कर रखी थी। कोई आश्रमवासी अपने पास अपनी रोज-रोजकी जरूरतसे ज्यादा कोई चीज रख नहीं सकता था — फिर वह खाने-पीनेकी चीज हो, पहनने-ओढनेकी चीज हो या काम-धन्धेकी चीज हो। रुपया-पैसा, सोना-चांदी, तरह-तरहके गहने और जेवर-जैसी चीजें तो कोई अपने पास रख ही नहीं सकता था। जिसके पास ये चीजें होती थीं, उसे ऐसी सब चीजोंको आश्रमके दफ्तरमें जमा करा देना पड़ता था। जो पुराने आश्रमवासी थे, वे भी अपने पास रुपया-पैसा नहीं रखते थे। आश्रममें औरतों और बच्चोंके लिए सोने-चांदीके या जवाहरातके गहने पहनना मना था। पुरुष तो कोई कुछ पहन ही नहीं सकता था। जिनके पास ऐसे गहने होते थे, उन्हें आश्रममें भरती होते ही अपने सब गहने दफ्तरमें जमा करा देने पड़ते थे। यही नियम था।

सिद्धान्त और आदर्शकी भावनाके साथ-साथ इस नियमका एक व्यावहारिक उपयोग भी था। आश्रमके चारों ओर खुली जगह थी। एक तरफ जंगल था। दूसरी तरफ नदी थी। अगल-बगलमें एक ओर सरकारी जेलखाना था और दूसरी ओर मरघट था। पासमें दूसरी कोई बस्ती नहीं थी। इसलिए रातके समयमें एकान्तका फायदा उठाकर अक्सर आसपासके कुछ आवारा और जरायमपेशा लोग चोरीके इरादेसे आश्रममें घुस आते थे और मौका पाकर, जहां जो

चीज उनके हाथ पड़ जाती थी, उसे उठा ले जाते थे। चप्पल, बूट, थाली, कटोरी, लोटा, गिलास, लालटैन, पहनने-ओढ़नेके कपड़े, खाने-पीनेकी चीजें, यहां तक कि जलाऊ लकड़ी और कोयला भी इन लोगोंकी निगाहसे बचता नहीं था। कभी-कभी ऐसे लोग आश्रमके घरोंमें सेंध लगाकर भी खाने-पीने और पहनने-ओढ़नेकी चीजें चुरा ले जाते थे। इसलिए आश्रममें रोज रातको पहरा देनेकी जरूरत पड़ती थी।

इस तरह रातमें होनेवाली छोटी-बड़ी चोरियोंके अलावा कभी-कभी आश्रममें दिनके समय भी चोरियां हो जाती थीं। ये चोरियां लोग आपसमें ही करते थे और इनका पता लगाना मुश्किल होता था।

सन् १९२९ के अक्तूबर-नवम्बरकी बात है। इसके कुछ ही महीनों पहले पुरानी परम्परामें पली १४–१५ सालकी एक लड़की आश्रममें आयी थी। उसका विवाह हो चुका था। उसके पति आश्रममें काम करते थे। पतिके ही आग्रहसे उसे भी आश्रममें आना पड़ा था। जब वह आयी तो घूंघट निकालती थी, मिलके कपड़े पहनती थी और सोने-चांदीके कुछ जेवर भी बदन पर पहने रहती थी। आश्रममें आकर उसने खादीके कपड़े पहने। घूंघट निकालना छोड़ा और गहने भी बहुत-कुछ उतार दिये। उस समय तक वह पढ़ना-लिखना भी नहीं जानती थी। पर आश्रमके वातावरणने उस पर अपना प्रभाव डाला और वह धीरे-धीरे बदलने लगी। उसकी हिम्मत बढ़ी और ज्ञान भी बढ़ने लगा। पर अपने गहनोंसे उसे इतना प्यार था कि उन्हें वह [illegible]

जमा करानेको तैयार नहीं हुई। अपनी पेटीमें ही बंद करके रखे रही। आश्रममें आनेसे पहले चांदीके वजनी 'साकले' (कड़े) वह अपने पैरोंमें पहना करती थी। आश्रममें आनेके बाद उसने उन्हें पैरोंसे निकाल कर अपनी पेटीमें रख दिया और ताला बन्द कर दिया। कई महीनों तक वे उसकी पेटीमें ही रहे।

एक दिन सवेरे-सवेरे उसे पता चला कि उसकी चाबीका गुच्छा खो गया है। वह परेशान-सी अपनी चाबीका गुच्छा ढूंढती रही। दिन भर उसे वह नहीं मिला। आश्रममें उसके साथ जो बड़ी बहनें रहती थीं, उन्होंने भी चाबीका गुच्छा ढूंढनेमें मदद की, पर वह नहीं मिला सो नहीं ही मिला। आखिर सबकी रायसे उस लड़कीकी पेटीका ताला तोड़ा गया। जब पेटी खुली और लड़कीने अपना सामान देखा, तो उसमें उसे चांदीके अपने 'सांकले' (कड़े) नहीं दीखे। वह रोने लगी। आश्रमकी बड़ी बहनोंने उसे हिम्मत बंधाई। उसके पतिको खबर दी गई। पतिने आकर अपनी पत्नीको समझाया और आश्रमके दफ्तरमें इसकी खबर कर दी।

बापू उन दिनों संयुक्त प्रान्तका दौरा कर रहे थे। आश्रमके मंत्रीने बापूको इस चोरीकी खबर पहुंचाई। उस लड़कीके पतिने भी बापूको लिखा। लड़की खुद भी पिछले कुछ महीनोंमें थोड़ा लिखना-पढ़ना सीख गई थी। उसने भी अपनी टूटी-फूटी भाषामें बापूको अपने नुकसानकी बात लिख भेजी।

ऐसे अवसरों पर बापू पत्रोंका जवाब तुरंत देते थे। उन्होंने अलीगढ़से अपने मौनवार (सोमवार) के दिन नीचे लिखा पत्र अपनी हिन्दीमें भेजा :

चि० कलावती,

तुम्हारे जेवर गये यह दुःखकी बात नहीं, परंतु सुखकी बात मानो। तुमने आश्रमके नियमका उल्लंघन किया, इसके लिए तुमको भगवानने शिक्षा दी। जेवरका कोई उपयोग तुम्हें नहीं था। अब मेरा मानो तो जो जेवर पहनती हो, उसे भी उतार दो, उसे बेचो, उसके पैसे बैंकमें रखो। तुम्हारा चित्त प्रसन्न होगा। मुझे लिखा करो।

बापूके आशीर्वाद

बापूका यह इतना अच्छा पत्र पाकर वह लड़की अपना दुःख भूल गई। जेवरकी चोरीका कोई असर उसके दिल पर नहीं रहा। उसने तुरंत बापूको लिखा कि उसका मन प्रसन्न है और वह चोरीके दुःखको भूल गई है।

जब बापूको उसका पत्र मिला, बापू अपने दौरेके सिल-सिलेमें कालाकांकर पहुंच चुके थे। उन्होंने १४–११–'२९ को वहांसे उस लड़कीके नाम दूसरा पत्र अपनी हिन्दीमें इस प्रकार भेजा :

चि० कलावती,

तुम्हारा पत्र मिल गया है। जेवर जानेका दुःख भूल गई हो, यह अच्छा हुआ। यदि तुम अच्छी

तरहसे सोचें तो पता चलता है कि इस जगतमें एक भी चीज किसी एक शख्सकी नहीं है । अमुक वस्तु अपनी मानकर वह गुम जाती है, अथवा उसका नाश हो जाता है तब हम दुःख मानते हैं । किसी चीजको अपनी माननेके बदलेमें यदि हम ईश्वरको मानें, तो हमारा सब दुःख मिट जाता है । तब यह प्रश्न उठता है कि यदि कोई चीज किसीकी नहीं है, तो रक्षा क्यों करें और कौन करे? इसका उत्तर यह है कि यद्यपि चीजके हम मालिक नहीं हैं, परंतु जो चीज हमारे हाथमें अपनी मेहनतसे अथवा किसी और योग्य साधनसे आयी है, उसके हम ईश्वरकी तरफसे प्रतिनिधि यानी रक्षक हैं और इस कारण उसकी रक्षा करना हमारा धर्म हो जाता है, और बगैर आलस्यके रक्षा करते हुए यदि वह चीजका नाश हो जाय या गुम जाय, तो हमें कुछ दुःख होना नहीं चाहिये ।

बापूके आशीर्वाद

बापूके इन दो पत्रोंने उस लड़कीको गहनोंके बारेमें ऐसा पक्का पाठ पढा दिया कि फिर कभी उसने गहने पहनने और अपने लिए नये-नये गहने बनानेकी जिद नहीं की । सादे कपड़े और सादी सजावटसे वह अपने मनको संतुष्ट रखने लगी । अपनी उस छोटी उमरमें अपरिग्रहका जो पाठ उसने बापूसे पढ़ा, उसे वह जीवन भर नहीं भूली ।

इस बातको आज ३५ वर्ष हो रहे हैं । वह लड़की आज भी मौजूद है । पर उसकी सादगीमें कोई फरक नहीं आया है ।

बापू कितने बड़े और कितने सच्चे शिक्षक थे, और उनकी शिक्षा कितनी सफल होती थी, इसका एक सजीव उदाहरण आश्रमकी उस लड़कीका यह सुन्दर प्रसंग है।*

बापूने इस तरह बहुतोंको अपने जीवन-व्रतोंकी दीक्षा दी। यों दीक्षा देने और दीक्षा लेनेवाले दोनों ही धन्य बने।

४

बेटीके बाप

आजके मध्यप्रदेशमें भोपालसे कुछ दूर नरसिंहगढ़ नामका एक नगर है। पहले वहां राजाका राज था। अब वहां न तो कोई राजा है, न राजाका राज ही है। आजसे कोई ३५ बरस पहले वहांके हाईस्कूलमें एक हेडमास्टर थे। उनका एक नौजवान लड़का था। वह काशी-विद्यापीठका स्नातक था। सन् १९२९ में वह लड़का गुजरात-विद्यापीठमें आया और वहां हिन्दीके अध्यापकका काम करने लगा। उस लड़केकी एक चचेरी बहन थी। बहनके पिता उसकी शादी करना चाहते थे। बहनकी इच्छा छोटी उमरमें शादी करनेकी नहीं थी। जब बहनने देखा कि उसके माता-पिता शादी करके ही रहेंगे, तो उसने अपने चचेरे भाईको लिखा और उसकी मदद मांगी। बहन चाहती थी कि किसी तरह उसकी शादी रुके और उसे सीखने-पढ़नेका मौका मिले। वह एक अच्छी और समझदार

---

* यह लड़की, अर्थात् [illegible]लालकी पत्नी, श्रीमती [illegible] [illegible]।

लड़की थी । वह अपने राष्ट्रकी सेवा भी करना चाहती थी। जैसे ही उसके भाईको पता चला, वह अपनी बहनको लानेके लिए काशी गया । बहनके माता-पिता काशीमें रहते थे । उन्होंने बहन पर कड़ी निगरानी रखनी शुरू कर दी थी। वे नहीं चाहते थे कि उनकी लड़की बिना शादी किये कहीं बाहर जाय । इसलिए भाई-बहनने मिलकर घरसे निकलने और साबरमती पहुंचनेकी तरकीब सोची । काशीके कुछ मित्रों और गुरुजनोंने भी उनके इस काममें सहयोग दिया । एक दिन भाई-बहन भेष बदलकर काशीसे रवाना हुए और साबरमती आ गये । भाईने बहनको बापूके सत्याग्रह-आश्रममें, जो उन दिनों उद्योग-मन्दिर कहलाता था, भरती करा दिया ।

बापू भाईको पहलेसे जानते थे । बापूकी सलाह लेकर ही भाई अपनी चचेरी बहनको लाने काशी गया था । जब बहन हिम्मत करके अपने भाईके साथ आश्रममे आ गयी, तो बापूने उसका बडे प्रेमसे स्वागत किया । उससे कह दिया कि अब तुम मेरी बेटी हो । आश्रममे निर्भय और निश्चित होकर रहो और काम सीखो । सेवा करो । बहन आश्रममें रहने और काम सीखने लगी । बापू उसे सेवाकी दीक्षा देने लगे ।

उधर जब उस बहनके मां-बापको पता चला कि वह अपने भाईके साथ कहीं चली गई है, तो उन्होंने चारों तरफ तार किये। वे बहुत घबरा गये और मन ही मन भाई-बहन पर नाराज भी हुए। उन्होंने एक तार बापूके नाम भी भेजा। वे जानते थे कि उनका भतीजा गांधीजीकी ही संस्थामें काम

करता है। इसलिए उन्होंने गांधीजीको कड़े उलाहनेवाला तार दिया और लिखा कि वे अपनी लड़कीको लेने आ रहे हैं। बापूने उनको आश्रममें आनेके लिए लिखा और बहुत मीठा जवाब भेजा।

एक दिन उस बहनके माता-पिता आये और बापूसे मिले। उनके मनमें नाराजी तो थी ही। सोचा था, बापूसे मिलने पर उनसे झगड़ा करेंगे और इस तरह मां-बापकी इजाजतके बिना घर छोड़कर आई हुई लड़कीको आश्रममें आसरा देनेके लिए उन्हें कड़ा उलाहना भी देंगे। पर जब वे बापूसे मिले, तो उनका सारा गुस्सा उतर गया। बापूने बड़े प्रेमसे उनके सामने उनकी लड़कीकी वकालत की और उनसे लड़कीको देशसेवाके लिए मांग लिया।

इस तरह मां-बापको नाराज करके आई हुई लड़की बापूकी अपनी बेटी बन गई। मां-बापने भी उसे बापूकी गोदमें सौंपकर बेफिक्रीकी सांस ली। उस दिनसे बापू उस लड़कीकी पूरी चिन्ता रखने लगे। वे उसकी मां भी बने और बाप भी बने। उन्होंने उसकी पढ़ाईका प्रबंध किया। उसे अपने साथ रखकर आश्रम-जीवनमें पलोटना शुरू किया। लड़की होशियार और बुद्धिमती थी ही। थोड़े ही समयमें उसने बापूका विश्वास पा लिया और वह दिन-रात उनके सान्निध्यमें रहकर बढ़ने लगी।

सन् १९२९-३० की यह बात है। १९३० में जब नमक-सत्याग्रह शुरू हुआ और बापू दांडी-यात्राके लिए रवाना हुए, तो ८० सत्याग्रहियोंकी उनकी टुकड़ीमें एक उस लड़कीका

वह चचेरा भाई भी था। उधर भाई कूच पर रवाना हुआ, इधर बहन अपनेको सत्याग्रहके और जेल-जीवनके लिए तैयार करने लगी।

कराड़ीमें बापूके गिरफ्तार होने पर साबरमती आश्रमसे बहनोंकी एक टुकड़ी हिजरती भाइयोंकी सेवाके लिए रवाना हुई। उसने खेड़ा जिलेके बोचासण गांवमें डेरा डाला, और वहां हिजरती भाई-बहनोंके बीच काम शुरू किया। श्रीमती गंगाबहन वैद्य उस टुकड़ीकी सरदार थीं। उनकी सरदारीमें आश्रमकी बहनोंने कई महीनों तक बहुत अच्छा काम किया। इन बहनोंमें हमारी यह बहन भी थी। इसने भी वहां अपने कामसे और सेवासे सबके दिल जीत लिये थे।

बापू उन दिनों यरवड़ा जेलमें बन्द कर दिये गये थे। वे जेलको महल और मन्दिर मानते थे और उसी भावसे अपना सारा जेल-जीवन बिताते थे। वे यरवड़ा-मन्दिरसे हर हफ्ते आश्रमवासी भाई-बहनोंके नाम पचासों छोटे-बड़े पत्र भेजा करते थे।

जेलमें रहते हुए भी बापू काशीसे आई अपनी इस नई बेटीको भूले नहीं। वहासे हर हफ्ते वे उसके नाम पत्र भेजते रहे और उसको अपने जीवन-कार्यकी दीक्षा देते रहे। जेलमें बैठे-बैठे भी बापू उस बहनके जीवनकी हर बाजूको संवारने और ऊंचा उठानेका यत्न करते रहते थे।

आखिर एक समय ऐसा आया जब बापूको इस बहनकी शक्तिमें बहुत विश्वास हो गया। बापू मिट्टीमें से मर्द पैदा करनेकी कला जानते थे। मुर्दोंमें जान फूंकनेकी शक्ति उनमें

थी। इसी कारण अपने पत्रों द्वारा वे उस वहनको खूव कसते रहे और खूव उत्साह दिलाते रहे। एक दिन वापूने उसे लिखा, "मैंने तुमसे वहुत आशायें वांधी हैं। उन्हें सफल करनेका सामर्थ्य ईश्वर तुम्हें दे।" और फिर एक दिन यह भी लिखा कि मैं चाहता हूं कि शरीर और शीलकी दृष्टिसे तू इतनी मजवूत वन जाये कि तुझे किसीसे डरनेंका कोई कारण न रहे।

वापू चाहते थे कि अवसर आने पर इस वहन-जैसी वहनोंको सारे राष्ट्रका वोझ उठानेकी शक्ति अपनेमें विकसित करनी चाहिये।

एक दिन वापूने उसे लिखा: "मुझे तेरे वारेमें डर नहीं है, लेकिन तुझे अपनाकर मैंने वड़ी जिम्मेदारी उठा ली है। तूने वड़ी आशा वंधाई है। इसीलिए तुझे जाग्रत रखता रहता हूं। मेरा विश्वास न होता, तो पहले ही दिन तुझे अकेली जाने देनेके लिए तैयार न होता। . . . मुझे तुझ पर पूर्ण विश्वास है। परमात्मासे यही मांगता हूं कि वह सफल हो।"

एक साधारण-सी, किन्तु होनहार लगनेवाली वालिकाको ऊंचा उठाने और आगे लानेके लिए वापू कितना यत्न करते थे, इसका यह एक अनोखा उदाहरण है।

वापूने इसी प्रकार देशकी आजादीकी लड़ाईके लिए सैकड़ों-हजारों शहीदों और सेवकोंको तैयार किया था।

काश, वापूके इस रूपको हम सव समझ पाते और अपने जीवनमें वैसे वन पाते!

५

'जो सहि दुख परछिद्र दुरावा'

साबरमती आश्रमकी बात है। सन् १९२९-३० का जमाना था। बापू आश्रमका नाम बदल चुके थे। साबरमतीका सत्याग्रह-आश्रम अब 'उद्योग-मन्दिर' कहलाने लगा था। आश्रमकी प्रार्थना-भूमिमें ही सत्याग्रह-आश्रमको सीमित कर दिया गया था। प्रार्थना-भूमिको छोड़कर बाकी सारा आश्रम 'उद्योग-मन्दिर' माना जाता था।

आश्रमका सारा वातावरण उद्योगमय था। बड़े सबेरे चार बजेसे लेकर रातके नौ बजे तक आश्रम मधुमक्खीके छत्तेकी तरह नाना प्रकारके उद्योगोंसे गूंजा करता था। कोई आश्रमवासी ऐसा न था, जो अपने काममें आलस्य करता हो या बेकारकी बातोंमें समय बिताता हो।

हर आश्रमवासीको सुबहसे रात तकके अपने कामका लेखा रखना पड़ता था और मिनट-मिनटका हिसाब देना पड़ता था। बापू खुद इस मामलेमें बहुत चौकन्ने और चौकस रहते थे और अक्सर आश्रमके अपने सभी साथियोंकी डायरियां देखा करते थे। यह भी एक कारण था, जिससे छोटे-बड़े सभी आश्रमवासी सजग भावसे अपना-अपना काम करनेमें लगे रहते थे।

आश्रमके उद्योगोंमें रास्तों पर झाड़ू लगाने, पाखाना-सफाई करने और चक्की पीसनेसे लेकर रसोई बनाने और

बरतन मलनें तकके कई छोटे-बड़े उद्योग चला करते थे। पर इन सब उद्योगोंका राजा था — चरखा। चरखेके आसपास छोटे-मोटे सब उद्योग गूंथ दिये गये थे। हर आश्रमवासीके लिए रोज सूत कातना जरूरी था। नियम यह था कि हरएकको कमसे कम १६० तार सूत तो हर रोज कातना ही चाहिये। छोटे बच्चों और बीमारोंको छोड़ कर और किसीके लिए कोई अपवाद न था।

बापूका अपना जीवन तो चरखामय बन ही गया था। चरखा उनके जीवनका एक सजीव अंग था। वे उसे कभी भूल नहीं सकते थे — उसकी उपेक्षा करना उनके लिए संभव न था। वे चरखेको भारतकी कामधेनु कहा करते थे। चरखेकी मददसे देशको स्वतंत्र करनेका बीड़ा उन्होंने उठाया था। चरखेको उन्होंने देशके दरिद्रनारायणोंका सबसे बड़ा सहारा माना था। चरखा उनके लिए देशकी स्वतंत्रता, स्वावलंबन और स्वाभिमानका जीता-जागता प्रतीक था। वे भगवानसे मनाया करते थे: 'हे भगवन्! अगर कभी मुझे इस दुनियासे उठाओ, तो ऐसे समय उठाना, जब मेरे एक हाथमें चरखेका हत्था हो और दूसरा हाथ पूनी थामे सूत निकाल रहा हो।' चरखा बापूकी निगाहमें इतना महान और पवित्र बन गया था! इसी कारण बापूने अपने जन्मदिनको चरखेका जन्मदिन बना दिया था। सारा देश इसी कारण भादों बदी बारसको चरखा-जयन्ती मनाने लगा, और चरखा-द्वादशीका दिन सारे देशके लिए एक पर्वका दिन बन गया।

बापू उन दिनों स्वर्गीय श्री मगनलालभाई गांधीके घरमें सुबहसे शाम तकका सारा समय बिताते थे। मगनलालभाईकी

मृत्युके बाद उनकी पत्नी और बच्चोंको ढाढस बंधानेके लिए बापूने यह नया निश्चय किया था। इसी घरमें वे दिनभर रहते, लिखते, पढ़ते, काम करते, चरखा कातते और आराम करते थे। पूरा एक वर्ष उन्होंने आश्रममें इस तरह बिताया।

*

एक दिनकी बात। बापूने उस दिन अपने नियमके अनुसार चरखे पर सूत कात लिया। वे उसे लपेटे पर लपेटने जा रहे थे कि अचानक किसी जरूरी कामसे उन्हें बाहर जाना पड़ा। जाते समय वे अपने उस समयके स्टेनोटाइपिस्ट श्री सुबैयासे कहते गये कि सूत लपेटे पर उतार लेना, तार गिन लेना और प्रार्थनाके समयसे पहले मुझे बता देना कि कुल कितने तार कते हैं। सुबैयाने 'हां' कह दिया। बापू चले गये।

इस बीच लोगोंने भोजन किया। फिर सब शामके समय हवाखोरीको निकले। बापूजी भी आश्रमके बच्चों और बड़ोंके साथ रोजकी तरह टहलने निकल गये। इतनेमें प्रार्थनाकी घण्टी बजी और जिसने जहां सुनी वहांसे वह कदम बढ़ाता हुआ प्रार्थनाकी जगह पर पहुचा। बापू भी बच्चोंके साथ हंसते-खेलते और तेज कदमोंसे चलते हुए समयसे कुछ पहले ही प्रार्थनाकी जगह आ पहुचे।

नियम यह था कि प्रार्थना शुरू करनेसे पहले सब आश्रमवासियोंकी हाजिरी ली जाती थी और हर आश्रमवासी अपनी उपस्थितिकी सूचना देते हुए 'ॐ' कहता था। साथ ही वह उस दिनके अपने कते सूतके तारोंकी संख्या भी बता देता था।

आश्रमवासियोंकी सूचीमें सबसे पहला नाम बापूका था। जब उस दिन प्रार्थनासे पहले बापूका नाम बोला गया, तो

उन्होंने अपनी तरफसे '३ॐ' कहा और सूतके तारोंकी संख्याके लिए अपने साथी श्री सुबैयाकी ओर देखा। सुबैया चुप थे। बापू भी चुप रह गये।

हाजिरी खतम होते ही प्रार्थना शुरू हुई। शान्त, प्रसन्न, गंभीर और संगीतके सुंदर-सुरीले वातावरणमें प्रार्थना समाप्त हुई। प्रार्थनाके बाद बापू हर रोज आश्रमवासियोंसे कुछ बातचीत किया करते थे। यह बातचीत कभी किसी प्रसंग पर प्रवचनके रूपमें होती थी, कभी चर्चाके रूपमें और कभी सूचना-सलाह या आदेशके रूपमें।

आज इस बातचीतने प्रवचनका रूप लिया। बापू बहुत ही गंभीर होकर बोले। सत्याग्रह-आश्रमका वह अनन्य साधक आज एक गहरी वेदनासे विकल होकर बोल रहा था। प्रार्थना-भूमि पर बैठे-बैठे बापूने अपने मनको खूब मथ लिया था। वे इस नतीजे पर पहुंचे थे कि आज उनसे एक भारी भूल हुई है। उन्होंने अपने कर्तव्यसे मुंह मोड़ा है। जिस हद तक उनसे यह भूल हुई है, उस हद तक सत्यकी साधनाका उनका आग्रह शिथिल हुआ है। उनका मन व्यथित हो उठा। वे दुःखी होकर कुछ इस तरह बोले: "मैंने आज भाई सुबैयासे कहा था कि मेरा सूत उतार लेना और मुझे तारोंकी संख्या बता देना। उस समय मैं एक मोहमें फंस गया। मैंने सोचा, सुबैया मेरा काम कर लेंगे। लेकिन यह मेरी बड़ी भूल थी। मुझे अपना काम खुद ही करना चाहिये था। सूत मैं कात चुका था। उसे लपेटे पर उतारना बाकी था। एक जरूरी काम उसी समय सामने आ गया और मैं सुबैयासे सूत उतारनेको

कहकर उस कामके लिए बाहर चला गया। जो काम मुझे पहले करना था, मैंने नहीं किया। भाई सुबैयाका इसमें कोई दोष नहीं। दोष मेरा है। मैंने क्यों अपना काम उनके भरोसे छोड़ा? मुझसे यह प्रमाद क्यों हुआ? सत्यके साधकको ऐसे प्रमादसे बचना चाहिये। उसे अपना काम किसी दूसरेके भरोसे नहीं छोड़ना चाहिये। आजकी इस भूलसे मैंने बहुत बड़ा पाठ सीखा है। अब मैं फिर ऐसी भूल कभी नहीं करूंगा।"

बापू कहते चले जा रहे थे। उनका एक-एक शब्द दिलकी गहराईसे, पूरी व्यथाके साथ निकल रहा था। सुननेवाले सब होकर सुन रहे थे। सुबैयाकी हालत ऐसी थी कि काटो तो खून नहीं! वे शायद सोच रहे थे कि धरती फट जाती, तो वे उसमें खुशी-खुशी समा जाते! सबके दिल भारी हो उठे। सबकी आखें अपनी ओर मुड़ी। सब गहरे सोचमें डूबे प्रार्थना-भूमिसे विदा हुए।

ये थे हमारे बापू! दूसरोंकी भूलको अपनी भूल बताकर उसके लिए छोटे-बड़े सबके सामने दिल खोल कर पछतानेवाले बापू। ऐसे बापू, जो दूसरोंकी ढाल बननेके लिए अपनेको मिटा सकते थे। वे सच्चे अर्थोंमे साधु थे। महात्मा थे।

तुलसीदासजीने ऐसे ही साधु-सन्तों और महात्मा पुरुषोंको ध्यानमें रखकर अपनी ये पंक्तियां लिखी थीं:

साधु-चरित सुभ सरिस कपासू,
निरस बिसद गुनमय फल जासू।
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा,
वन्दनीय जेहि जग जस पावा॥

६

उत्तम अभिभावक

वापूके पत्र : बड़ी वहनके नाम

चि० दुर्गा,

तेरा सुन्दर पत्र मिला। और आगे वढ़ना। खूब काम करना। सवेरे उठना कभी न भूलना। उठकर प्रार्थनामें बराबर जाग्रत रहना।

वापूके आशीर्वाद

*

चि० दुर्गा,

तेरा पत्र अच्छा है। अक्षर भी अच्छे हैं। सिलाईमें तुम सब मेरी परीक्षा लोगी या मुझे परीक्षा दोगी? तुम सब तो वहां व्योंतना भी सीखती हो। यहां यह सब मुझे कौन सिखाये? लेकिन देखूंगा। मेरी लाठियां (मुझसे) चढ़ती हैं या मैं? मैंने तेरे अक्षरोंकी तारीफ इस आशासे की है कि तू उन्हें और अच्छा वनायेगी। राधावहनके अक्षरोंका नमूना तो तुम सब लड़कियोंके सामने है ही। लिखे हुए पत्रको दुवारा पढ़ जानेसे बेध्यानमें रही भूल सुधारी जा सकती है।

१३-७-'३०, य० मं०

वापूके आशीर्वाद

*

चि० दुर्गा,

तेरा अच्छे अक्षरोंमें लिखा गया अच्छा पत्र मिला है। महावीरके बारेमें तूने जो लिखा है, सो ठीक है। जो सबको

समान समझना जानता है, वह जीतता है। काकाका शंकर भी इस काफिलेमें आ पहुंचा है। सेवाके कामोंमें भलीभांति लीन हो जाना। किसी भी काममें आलस न करना। हम सब तो यहां मजेमें हैं। मैत्रीसे कहना कि वह आलस जरा भी न करे। लाल पानीमें हाथ डुबोती है न? खानेमें मर्यादा रखें।

बापूके आशीर्वाद

*

चि० दुर्गा,

क्या तू रूठ गई है? तू पत्र भी न लिखे और रूठ भी जाय, यह कौनसा न्याय है? आश्रमका या पहाड़का? या रूठनेका बहाना करके लिखनेका आलस करती है? तू रोज कितना कातती है? दूसरा क्या काम करती है? नियमित रूपसे सबेरे उठती है? कितने अध्याय कण्ठ किये हैं?

१–९–'३०, य० मं०

बापूके आशीर्वाद

*

चि० दुर्गा,

तेरा पत्र मिला। मैं हरगिज देरमें जवाब नहीं देता। बल्कि तू लिखती नहीं, इसीलिए मानती है कि मेरा पत्र देरमें पहुंचा। तेरे पत्रके अन्तमें लिखे हुए अक्षर सत्यदेवीके ही हों, तो वे तेरे जैसे तो हैं ही। अतएव अब कुछ ही दिनोंमें वह तुझसे आगे बढ़ जानी चाहिये।

१२–१०–'३०, य० मं०

बापूके आशीर्वाद

*

चि० दुर्गा,

तेरे पत्रसे मुझे अभी सन्तोष नहीं हो रहा है। रोजका कार्यक्रम लिखना। नियमित रूपसे लिखने लगेगी, तो नया विशेषण मिलेगा। इस बार अक्षर अच्छे लिखे हैं। तेरे पत्रके नीचे मैत्रीके अक्षर देखकर खुश हुआ हूं। उसके विस्तृत पत्रकी राह देखूंगा।

१७–१०–'३०, य० मं० बापूके आशीर्वाद

*

चि० दुर्गा,

'अब और क्या लिखूं?' ऐसा तू क्यों लिखती है? एक हफ्तेमें तो बहुतेरी घटनायें घट जाती हैं। उनका वर्णन करनेकी शक्ति आनी चाहिये। तेरी उमरकी लड़कीके मनमें तो सैकड़ों विचार उठते रहते हैं। उन विचारोंकी बात भी लिखी जा सकती है। हां, एक शर्त है — लिखनेका उत्साह चाहिये, उसमें मन तल्लीन होना चाहिये। अगर तू डायरी रखती हो, और उसमें सब कुछ लिखती हो, तो उसमें से भी लिखनेके लिए विषय मिल सकते हैं।

२४–१०–'३०, य० मं० बापूके आशीर्वाद

*

चि० दुर्गा,

इस बारके तेरे पत्रको मैं अच्छा मानता हूं। भाषाकी भूलें जरूर हैं, पर उसमें कोई हर्ज नहीं। लिखे हुए पत्रोंको दुबारा पढ़नेकी आदत डालनी चाहिये। इससे कुछ भूलें सुधारी जा सकती हैं। दतौन प्रार्थनासे पहले हो तो अधिक अच्छा

रहे। सिलाईमें क्या सीख रही है? चरखे और तकली पर एक घंटेमें कितना और किस अंकका सूत कात लेती है? लिखना। अगर गति निकाली न हो, तो निकाल कर लिखना। अंक निकालना जानती है न? बिछौनेमें लेटते समय रामनाम लेती है, सो बहुत ही अच्छी आदत है।

३-११-'३०, य० मं० बापूके आशीर्वाद

बापूके पत्र: छोटी बहनके नाम

चि० सत्यदेवी,

अगर तुम लड़कियोंका या और किसीका यह खयाल हो जाये कि मैं जिसे पत्र नहीं लिखता हूं, उसे भूल गया हूं, तब तो मेरी मुसीबतका कोई पार ही न रहे। क्या इतने बड़े परिवारमें सबको लिखा जा सकता है? लेकिन तुम सब तो जरूर लिख सकती हो।

तेरे अक्षर सुन्दर हैं, और (तेरा बनाया) गमला व गमलेमें खड़े फूलसे तो सुवास भी आये, ऐसा (बढ़िया) वह चित्र लगता है। सब कुछ ध्यान देकर करती है न? क्या धर्म अब भी ऊधम मचाता है?

मौनवार, य० मं० बापूके आशीर्वाद

*

चि० सत्यदेवी,

तेरा पत्र मिला। तूने पेड़ अच्छे निकाले हैं। अब तुझे चाहिये कि तू जिन्दा पेड़ोंको देखकर अपने चित्रोंसे उनकी तुलना करे, जिससे तेरा चित्र देखनेवालेको ऐसा लगे, मानो

वह असल पेड़ देख रहा हो। अक्षरोंको ठीक-सा मोड़ देनेसे पहले सही अक्षर निकालनेका पक्का अभ्यास कर लेना चाहिये। तुझे अच्छी बातें सीखनेका शौक है। इसलिए कहता हूं कि तू अपने हिज्जे अभीसे सही लिखना सीख ले। कातनेमें आलस मत करना।

९–८–'३०, य० मं० बापूके आशीर्वाद

*

चि० सत्यदेवी,

मैं तेरे पत्र भूलचूक सुधारकर पढ़ूं, इससे अच्छा तो यह है कि तू ही वहांसे अपनी भूलें सुधारकर पत्र लिखे। इससे दोहरा लाभ है। तुझे तेरी भूलें मालूम हो जायं और मुझे कुछ सुधारना न पड़े। है न अच्छी बात?

माताजीसे कहना, मुझे लिखें और बतायें कि आजकल क्या-क्या कर रही हैं।

२२–८–'३०, य० मं० बापूके आशीर्वाद

*

चि० सत्यदेवी,

तेरा पत्र मिला। तुझे अपनी गुजराती किसीसे सुधरवा लेनी चाहिये। चित्रका मुहावरा रखा है? समय-समय पर उसमें सुधार नहीं दीखता। क्या धर्मकुमार ऊधम मचाता है?

[illegible]–[illegible]–'३०, य० मं० बापूके आशीर्वाद

बापूका पत्र : छोटे भाईके नाम

चि० धर्मकुमार,

तेरा पत्र मिला। स्याहीसे लिखनेकी आदत डालनी और छापेके अक्षरों जैसे अक्षर लिखने चाहिये। ऊधम मचाता है न?

मौनवार, य० मं० बापूके आशीर्वाद

*

ऊपर सन् १९३० में आश्रमकी दो कन्याओं और एक कुमारके नाम भेजे बापूके कुछ पत्रोंका अनुवाद दिया है। मूल पत्र सभी गुजरातीमें हैं। नमक-सत्याग्रहके सिलसिलेमें सरकारने बापूको पकड़ा और पूनाके पास यरवडा जेलमें बन्द कर दिया। ये पत्र वहींसे लिखे गये थे। बापू जेलको महल और मन्दिर मानते थे, इसलिए उनके हरएक पत्रके अन्तमें तारीखके साथ संक्षेपमें 'य० मं०' लिखा रहता था, जिसका पूरा रूप है, यरवडा महल या मन्दिर। बापू यरवडा मन्दिरसे हर हफ्ते ढेरों पत्र साबरमती आश्रमके अपने साथियों और उनके बच्चोंके नाम भेजा करते थे। एक ही पहाड़ी (नेपाली) परिवारके तीन बच्चोंके नाम समय-समय पर भेजे गये ऐसे कुछ पत्रोंके नमूने ऊपर दिये हैं। जिन बच्चोंके नाम ये पत्र लिखे गये हैं, वे अपनी माके साथ आश्रममें रहते थे। उनके पिताका देहान्त हो चुका था। तीन बहनें थीं और दो भाई थे। जबसे वे आश्रममें आये, बापू ही उनके पिता और संरक्षकका काम करने लगे। बापू आश्रममें हों, आश्रमके बाहर हों, जेलमें बन्द हों या देशमें दौरा करते हों, उन्हें

अपने साथीके इन बच्चोंका ध्यान सदा बना रहता था। उनके जीवनको सही दिशा देनेके बारेमें बापू कितने सजग और सचेष्ट रहते थे, सो इन पत्रोंके एक-एक शब्द और वाक्यसे स्पष्ट होता है। इनमें क्या नहीं है? हास्य, विनोद, मर्म, कटाक्ष, सलाह, सहानुभूति, ममता, वात्सल्य, प्रोत्साहन, उपदेश, सभी कुछ गागरमें सागरकी तरह मौजूद है। मांकी ममता, पिताका शासन और गुरुकी सावधानी इन पत्रोंमें मानो छलकी-सी पड़ती है। बापूकी अपनी यही विशेषता थी। जेलमें बैठे एक ओर वे देशकी स्वतंत्रताके लिए दुनियाके बड़ेसे बड़े साम्राज्यके साथ जोरकी टक्कर ले रहे थे और दूसरी ओर अपने आश्रमवासी साथियों और उनके बच्चोंकी चिंतामें मांकी तरह घुलते भी रहते थे। बापूके जीवनका यही अनूठापन था — वज्रकी तरह कठोर, कुसुमकी तरह कोमल — लोकोत्तर पुरुषका यही न लक्षण कहा गया है?

७

एक सुभग मिलन

देशमें सम्पूर्ण स्वातंत्र्यकी आकांक्षा जोर पकड़ रही थी। गांधीजी देशके कोने-कोनेमें घूम-घूम कर देशकी जनताको स्वतंत्रताके लिए जगा रहे थे। लोक-हृदय आन्दोलित हो रहा था। उस साल उत्तर प्रदेशकी अपनी लम्बी यात्राओंके बाद बापू लाहौर पहुंचे थे। वहां कांग्रेसके अधिवेशनमें देशने अपने लिए सम्पूर्ण स्वातंत्र्यका संकल्प किया था। ३१ दिसंबर, १९२९ की आधी रातको रावीके तट पर, तिरंगेकी छायामें, देशकी आत्माने दृढ़ताके साथ अपने राष्ट्रीय लक्ष्यकी घोषणा की थी। लाहौरसे लौटकर बापू अभी साबरमती आये ही थे। जाड़ा पूरे जोर पर था। २० जनवरी, १९३० का दिन आया। साबरमतीके सत्याग्रह-आश्रममें उसी दिन हमें पता चला कि अपनी लम्बी विदेश-यात्राके लिए प्रस्थान करनेसे पहले आज गुरुदेव श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर आश्रममें पधारनेवाले हैं। तब तक मैंने गुरुदेवका नाम ही सुना था। उनकी कुछ रचनाएं पढ़ी थी, पर उनके दर्शनोंका लाभ नहीं मिला था। मनमें सहज ही एक उत्सुकता जागी। एक कुतूहल जन्मा। जिनकी कविताएं पढ़ी हैं, जिनकी कहानियोंने हृदयके तारोंको छुआ है, जिनके उपन्यासोंका जी-भर रसास्वादन किया है, जिनके महान व्यक्तित्वकी चर्चायें सुननेको मिली हैं, वे स्वयं आज आश्रम-परिवारको दर्शन देनेवाले हैं। इसकी खुशी हम सबके दिलोंमें थी। मेरे दिलमें तो थी ही।

बापू उन दिनों स्व० श्री मगनलालभाई गांधीके घरमें उनके परिवारके साथ रहते थे। सुबहसे शाम तकका उनका सारा समय वहीं बीतता था। रात सोनेके लिए वे अपने 'हृदय-कुंज' में आ जाते थे। उस दिन आश्रममें गुरुदेव और बापूका वह प्रथम मिलन मगनलालभाईके घर पर ही हुआ। संयोगसे और सौभाग्यसे जिस समय गुरुदेव बापूसे मिलने पधारे, मैं वहीं था। गुरुदेवके प्रथम दर्शनकी वह रम्य और भव्य झांकी मेरे मनमें कुछ इस तरह बस गई है कि इन ३१ वर्षोंके अन्तरके बाद भी मुझे ऐसा लगता है, मानो मैं उन्हें आज भी अपनी उस धीर-गम्भीर और प्रसन्न चालसे बापूके निवासकी ओर बढ़ते देख रहा हूं। देह पर लम्बा, काला, ऊनी चोगा, ऊंचा कद, गौर वर्ण, उन्नत ललाट, सिर और दाढ़ीके लहराते बालोंकी श्वेत छटा, मधुर कण्ठ, प्रेमरसमें भीगी आंखें, मोहक व्यक्तित्व, नम्र, निरभिमानी स्वभाव, इन सबने मिलकर उस दिन, उस घड़ी, आंखों और कानोंके लिए एक रुचिकर मेजबानी ही खड़ी कर दी। गुरुदेवके बारेमें जो कुछ सुना-पढ़ा था, प्रत्यक्षमें उन्हें उससे सवाया पाकर मन मुग्ध हो उठा। मन ही मन उनकी उस विभूतिकी वन्दना करके हम दूरसे उन्हें देखते-सुनते रहे।

कोई दो घंटों तक गुरुदेव और गांधीजीके बीच गम्भीर चर्चायें चलती रहीं। हम लोग नजदीकके बरामदेमें खड़े गुरुदेवके बाहर आनेकी बाट जोहने लगे। उस प्रतीक्षाका भी अपना एक अनूठा आनन्द था। इस बीच हमें पता चला कि चर्चाके बाद आश्रमकी प्रार्थना-भूमिमें आश्रम-परिवारकी ओरसे गुरुदेवका

स्वागत होगा और वहीं गुरुदेवकी अमृतवाणी सुननेका लाभ भी हमें मिलेगा। सहज ही इस समाचारसे मनको बड़ी प्रसन्नता हुई। हमारी उत्सुकता और भी बढ़ी। हम अधीर भावसे उस क्षणकी बाट जोहने लगे, जब गुरुदेवकी अन्तर्बाह्य विभूतिका लाभ लूटनेका अवसर हमें मिलनेवाला था।

मुझे अच्छी तरह याद पड़ रहा है कि उस दिन बापूने गुरुदेवके स्वागतका विशेष आडम्बरवाला कोई आयोजन नहीं किया था; यद्यपि उस दिन आश्रममें सम्भवतः गुरुदेवका वह पहला ही पदार्पण था और वही अन्तिम भी सिद्ध हुआ। ऊपर खुला आसमान, नीचे धरती पर साबरमतीकी महीन-मुलायम रेतका गुदगुदा बिछौना, आसपास प्रकृतिकी अपनी सौम्य-सुभग छटा, निकट ही साबरमतीकी मन्द-मधुर धाराका अविरत प्रवाह, डालों पर पक्षियोंकी चहचहाहट और शान्त-एकान्त वातावरण, स्वागतकी यही सब सामग्री थी। प्रार्थना-भूमिके बीचोबीच गुरुदेवके लिए एक छोटा तख्त बिछाया गया था।

जब उन दो महान विभूतियोंके बीचकी गम्भीर चर्चायें समाप्त हुईं और गुरुदेवके स्वागतका समय समीप आया, तो बापू गुरुदेवको आगे करके अपने निवाससे निकले और प्रार्थना-भूमि पर पहुँचे। आश्रम-परिवारने खड़े होकर हाथ जोड़े और शान्त-प्रसन्न भावसे गुरुदेवका हार्दिक स्वागत किया। बापूने गुरुदेवसे निवेदन किया कि वे अपना आसन ग्रहण करें। आरती, कुंकुम-तिलक और हाथकते सूतकी माला, ये तीन ही उन भाव-भरे स्वागतके उपकरण रहे। अकेले गुरुदेव मंच पर बैठे। बापू मंचसे कुछ हटकर दाहिनी तरफ प्रार्थना-भूमि

पर ही बैठ गये । सामने सारा आश्रम-परिवार बैठा। आश्रमके संगीताचार्य स्व० श्री नारायण मोरेश्वर खरेजीने अपने भाव-विभोर कण्ठसे गुरुदेवके स्वागतमें एक मधुर भजन गाया। वातावरण भजनकी उस मस्तीसे भर गया । कुछ क्षणोंके लिए सारा समाज शान्त और स्तब्ध हो गया । अब उसकी निगाहें गुरुदेवकी ओर थीं । कान उत्सुक थे । मन अभिमुख थे। गुरुदेव अपने कोमल कण्ठसे कुछ कहें और हम सब सुनें, यही हममें से हरएककी भावना थी। बापूने आश्रम-परिवारकी ओरसे गुरुदेवका आन्तरिक स्वागत किया । उन्होंने इस बात पर अपना हर्ष प्रकट किया कि गुरुदेव आश्रममें पधारे हैं। बापूकी विनती पर गुरुदेवने आश्रम-परिवारके सामने उस जमानेकी स्थितिको ध्यानमें रखकर अपने मनकी कुछ बातें गम्भीर भावसे कहीं। अन्तमें सबकी भावनाका विचार करके गुरुदेवने अपने मधुर कण्ठसे अपनी एक रचना भी सुनाई। उसका स्वर तो आज भी कानोंमें गूंजता-सा लगता है, पर उसके बोल ध्यानमें नहीं हैं। यदि उस समय अन्दाज होता कि कोई ३१ सालोंके बाद इस पावन-प्रसंगको लेकर गुरुदेवकी जन्म-शताब्दिके निमित्तसे दो शब्द लिखनेका सुअवसर मिलेगा, तो शायद उन बोलोंको उसी समय लिख लेता और आज उन्हें यहां दुहरा देता । लेकिन अब पछतानेसे लाभ भी क्या?

आश्रम-परिवारके बीच गुरुदेवके इस स्वागतकी जो एक अमिट छाप मेरे मन पर रह गई है, वह है बापूकी अपार नम्रताकी । बापू अपने समयके सबसे बड़े सजग साधक थे और मर्यादा पुरुषोत्तम भी थे। हर जगह, हर प्रसंगमें, उनके

यह रूप निखर-निखर आता था। वे अपनेको अपने बड़ोंका भक्त और दासानुदास मानते थे। बड़ोंकी मर्यादाको रक्षामें वे अपनी ओरसे पूरे दक्ष, सजग और तैयार रहते थे। गुरुदेवको मंच पर बैठाकर बापू प्रार्थना-भूमिकी रेत पर सबके साथ सहज भावसे बैठे, इसमें मुझे उस समय भी उनकी महानताके दर्शन हुए थे। आज भी उस प्रसंगका वह अहोभाव मेरे मन पर छाया हुआ है। सारा व्यवहार इतना सहज हुआ कि और किसीको उसमें कुछ लगा हो, चाहे न लगा हो, पर वह सहजता ही मेरे मन-प्राणको कुछ इस तरह छू गई कि मैं मन ही मन अपने समयकी इन दो महान विभूतियोंकी इस रीति-नीति पर मुग्ध हो उठा।

३१ साल पहलेके उस भव्य-दिव्य दृश्यका आज जहां-तहां दीखनेवाले दृश्योंके साथ मेल बैठानेकी बात जब भी सामने आती है, तो दोनोंमें जमीन-आसमानका फर्क दीख पड़ता है। आज तो बड़ों और छोटोंके बीचकी सारी मधुर मर्यादायें लुप्त होती जा रही हैं और नम्रता, विवेक, विनयशीलता, शिष्टता और मर्यादाका स्थान उद्दण्डता और स्वच्छन्दता ले रही है। अब अग्रजों और अनुजोंके बीच श्रद्धा, भक्ति, सदाचार, स्नेह और सौजन्यके दर्शन क्वचित् ही हो पाते हैं। सारा वातावरण स्पर्धा, अश्रद्धा, अनादर, क्षुद्रता, कुत्सा, कटुता, उपहास और क्लेशसे संकुल होता जा रहा है। राम-कृष्णसे लेकर गुरुदेव और गांधी तक इस देशमें मानवीय व्यवहारोंकी जिस पुण्य-पावन परम्पराका पोषण और संवर्द्धन हुआ, वह परम्परा आज हमारी आंखोंके सामने निर्ममता और निर्लज्जतासे

रौंदी-कुचली जा रही है और हम हैं कि निरुपाय भावसे अपने आजके लोक-जीवनकी इस करुणान्तिकाको देख-सह रहे हैं। गुरुदेव और गांधीके मिलनकी यह पुण्य कथा हमें अपने स्वरूप और स्वधर्मके प्रति तनिक भी सजग बना पाये, तो परम कारुणिक भगवानकी हम पर बड़ी ही कृपा हो!

८

सार्वजनिक धनके प्रखर प्रहरी

बापूने अपनी प्रचण्ड साधनाके बलसे देशके सार्वजनिक जीवनको अपने समयमें जितना शुद्ध-बुद्ध किया था, उतना उन दिनों देश-विदेशमें शायद ही कोई कर सका होगा। इस विषयमें उनकी उत्कटता और कठोर जागृति न केवल दर्शनीय थी, बल्कि चिरस्मरणीय और सदा अनुकरणीय भी रही। सार्वजनिक धनके शुद्ध उपयोगके लिए उन्होंने अपने जीवन-कालमें कड़ीसे कड़ी साधना की थी और अधिकसे अधिक सजगताके साथ इस धनकी रक्षाका प्रयत्न किया था। एक पाईका भी दुरुपयोग उनसे सहा नहीं जाता था। इस मामलेमें उनकी चौकसाई और उनकी कठोरताकी मिसाल पाना मुश्किल ही है। उन्होंने जबसे सार्वजनिक सेवाके क्षेत्रमें प्रवेश किया, तभीसे सार्वजनिक धनके प्रति उनकी दृष्टि बहुत ही स्पष्ट और चौकस रही। जैसे-जैसे उन्होंने अपने जीवनमें अपरिग्रहकी भावनाको बढ़ाया, वैसे-वैसे सार्वजनिक धनकी पवित्रताके विषयमें उनके विचार दृढ़ होते गये और

वे अद्भुत दृढ़ताके साथ इस धनकी रक्षाके नये-नये मोर्चे खड़े करनेमें लग गये।

चौबीस सालकी उमरमें गांधीजी दक्षिण अफ्रीका गये। लगातार इक्कीस बरस दक्षिण अफ्रीकामें रहे। वहां के दुःखी अपने देशवासियोंकी दुर्दशा देखकर उनका हृदय द्रवित हुआ और उन्होंने अपने तन, मन और धनसे अपने आपको देश-वासियोंकी सेवामें तन्मयतापूर्वक लगा दिया। इसीसे [illegible] उनकी वह उत्कट सेवा इतनी फूली, फली और फैली कि न केवल दक्षिण अफ्रीकामें बल्कि सारी दुनियाके कोने-कोनेमें उसकी सुवास फैल गई। एक बार जब वे दक्षिण अफ्रीकासे विदा होकर स्वदेशके लिए रवाना होने लगे, तो दक्षिण अफ्रीकामें बसे भारतवासियोंने विदाईके अवसर पर अपने अन्तरकी गहरी प्रेरणासे गांधीजीको तरह-तरहके मूल्यवान उपहार भेंट किये। इन उपहारोंमें उन्हें सोने-चांदी और हीरे-जवाहरातकी अनेकानेक चीजें मिलीं। जिस दिन विदाई-समारोह हुआ और ये उपहार समर्पित किये गये, उस दिन गांधीजी रात भर सो नहीं सके। सैकड़ों रुपयोंके मूल्यकी अनेक वस्तुएं उन्हें उपहारमें मिली थीं। वे गहरी चिन्तामें और गहरे विचारमें डूब गये। अपनेसे पूछने लगे: "क्या मुझे ये सारे उपहार अपने पास रखने चाहिये? क्या इन्हें अपनी चीज समझकर अपने निजके उपयोगके लिए इनको अपने पास रखनेसे मेरी सेवा-शक्ति बढ़ेगी? क्या सार्वजनिक सेवाका कोई पुरस्कार अथवा उपहार लेना सेवकके लिए श्रेयस्कर होगा?" आदि-आदि प्रश्न एक तूफानका रूप लेकर उनके मनमें उठे।

रौंदी-कुचली जा रही है और
अपने आजके लोक-जीवनकी इ
हैं। गुरुदेव और गांधीके मिल
स्वरूप और स्वधर्मके प्रति त
परम कारुणिक भगवानकी हम

सार्वजनिक ध

बापूने अपनी प्रचण्ड
जीवनको अपने समयमें जि
दिनों देश-विदेशमें शायद
विषयमें उनकी उत्कटता
थी, बल्कि चिरस्मरणीय
सार्वजनिक धनके शुद्ध
कालमें कड़ीसे कड़ी
सजगताके साथ इस ध
पाईका भी दुरुपयोग
मामलेमें उनकी चौक
पाना मुश्किल ही
क्षेत्रमें प्रवेश किया,
बहुत ही स्पष्ट औ
जीवनमें अपरिग्रह
धनकी पवित्रताके

आमंत्रित किया गया था। उन दिनों मैं साबरमती आश्रममें 'हिन्दी नवजीवन' का और हिन्दीके शिक्षकका काम करता था। जब बापू अपने कुछ साथियोंको लेकर मोरवीके लिए रवाना होने लगे, तो उनकी अनुमतिसे मैं भी उनके दलमें सम्मिलित हो गया। यात्राकी सारी व्यवस्था गांधीजीके निजी सचिव स्व० श्री महादेवभाई देसाईके हाथमें थी। खर्चका सारा हिसाब उन्हींने रखा था।

सम्मेलनके निमित्तसे हम सब मोरवी पहुंचे। धूमधामसे सम्मेलन हुआ। बापू सम्मेलनके कामोंमें और चर्चाओंमें बहुत व्यस्त रहे। सरदार पटेल, पंडित नेहरू और महात्मा गांधीके सम्मेलनमें पहुंच जानेसे न केवल उसकी शोभा और शक्तिमें वृद्धि हुई, बल्कि उसका महत्त्व भी बहुत बढ गया। सम्मेलनकी पूर्णाहुतिके बाद जब बापू मोरवीसे विदा होने लगे, तो तत्कालीन मोरवी-नरेशने बापूसे अनुरोध किया कि वे अपनी वापसी यात्रामें वीरमगाम तक उनके 'सलून' में यात्रा करें। मोरवीके राजा साहबकी आत्मीयता और उनके अनुरोधसे बापू प्रभावित हुए और उन्होंने उनकी भावनाका विचार करके 'सलून' में यात्रा करना स्वीकार कर लिया।

गांधीजीके दलके हम सब लोग स्टेशन पहुंचे। जब गाड़ीके छूटनेका समय हुआ, तो सब गाड़ी पर सवार हुए और गाड़ी चल दी। रास्तेमें तरह-तरहकी चर्चायें चलती रहीं। बातचीतके सिलसिलेमें बापूने अपने साथ वापस चलनेवाले यात्रियोंकी पूछताछ की। कितने लोग साथमें हैं, कितने टिकट खरीदे गये हैं, इसकी चर्चा चली। मालूम हुआ कि यात्री

कम हैं और टिकट ज्यादा हैं। जहां तक मेरा खयाल है, महादेवभाईने दो टिकट ज्यादा खरीद लिये थे। उनका खयाल यह रहा कि जितने लोग साबरमतीसे साथ चले थे, उतने सब वापस चल रहे हैं। इसलिए उसी हिसाबसे उन्होंने टिकट खरीद लिये थे। लेकिन दो साथी मोरबी रह गये। न तो उन्होंने किसीसे कहा कि हम यहीं रुक रहे हैं, और न किसीने उनसे पूछा कि तुम साथ चलोगे या नहीं। वापस लौटनेकी हड़बड़ीमें किसीको इसका ध्यान नहीं रहा और महादेवभाईने दो टिकट ज्यादा खरीद लिये।

जब चलती रेलमें बापूके सामने यह भेद खुला, तो वे तुरन्त बहुत गम्भीर हो गये। उनका चेहरा अन्तरकी वेदनासे व्यथित हो उठा। उनके मनकी अशान्ति बढ़ गई। मेरा खयाल है कि उस समय शामके ६ या ६–३० बजे होंगे। मुझे याद पड़ रहा है कि उस रात रेलमें न बापू सो सके और न उनके साथी सो सके। सारी रात मन-प्राणको बिलोनेवाला ऐसा उत्कट और प्रखर मंथन तथा चिन्तन चला कि उसके तापको सहना सबके लिए बहुत ही कठिन हो गया। बापूकी वेदना और व्यथाका तो पार ही नहीं रहा। उनका संताप उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। उन्होंने अपने स्वभावा-नुसार सारा दोष अपने ऊपर ले लिया और वे अपनी [illegible] [illegible]के लिए अपनेको बुरी तरह कोसने लगे। उन्होंने [illegible]थियोंसे कुछ नहीं कहा।

वे अपनेको दोषी मानकर अपने आपसे कुछ यों कहने [illegible]: 'तू इतना गाफिल क्यों बन गया? तूने खयाल क्यों नहीं

रखा? गाड़ी पर सवार होनेसे पहले तूने क्यों नहीं पूछा कि कितने लोग बैठ रहे हैं और कितनोंके लिए टिकट खरीदे गये हैं? गलती तेरी है। महादेव तो अभी बच्चा है। पर तुझे बुढ़ापेमें यह क्या हो गया कि तूने खबरदारीसे काम नहीं लिया? लोग तेरी सचाई पर भरोसा करके तुझे सार्वजनिक कामके लिए पैसा देते हैं। उस पैसेका ठीक-ठीक उपयोग करना तेरा कर्तव्य और धर्म है। आज अपने इस कर्तव्य और धर्मके पालनमें तू चूका है। तुझे इसका जवाब अपने सिरजनहारके सामने देना होगा।' आदि-आदि।

उस समयकी बापूकी वह विकलता इतनी उत्कट थी कि आज भी उनका वह वेदनासे विह्वल वदन मेरी आंखोंके सामने ज्योंका त्यों खड़ा-सा लगता है। उस दृश्यको भुलाना सम्भव नहीं है। वह अमिट रूपसे हृदय पर अंकित हो चुका है।

साथियोंने बापूको बहुतेरा समझाया। महादेवभाईने भी उनको अनेक प्रकारसे आश्वस्त करनेका प्रयत्न किया। असावधानीके लिए माफी मांगी। आगे ऐसी असावधानी न करनेका वचन दिया। यह भी कहा कि दो टिकटकी जो रकम ज्यादा खर्च हो गई है, उसकी पूर्ति वे अपने पाससे कर देंगे। आश्रमके खर्चमें उसे नहीं डालेंगे। शायद यह भी सुझाया कि रेल्वे-कम्पनीसे लिखा-पढ़ी करके इन टिकटोंकी रकम वापस प्राप्त करनेकी कोशिश करेंगे। जुर्मानेकी रकम देनी पड़ी, तो अपने पाससे दे देंगे। किन्तु बापूको इससे भी सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने उलटकर महादेवभाईसे पूछा:

नियम बनाया था। सब लोग अपने-अपने हिस्सेका काम बारी-बारीसे अपने समय पर किया करते थे। बापू भी अपने हिस्सेका काम करनेके लिए समय पर पहुंच जाते थे।

इन दिनों आश्रमके कोठारकी व्यवस्था गांधीजीके एक भतीजे श्री छगनलालभाई गांधीके जिम्मे थी। साबरमती आश्रमसे अहमदाबाद नगर काफी दूर था। आश्रमकी जरूरतका सारा सामान वहींसे लाना होता था। आश्रमकी बैलगाड़ीमें सामान लाया जाता था। जरूरी सामान खरीदनेका सारा काम श्री छगनलालभाई गांधी ही किया करते थे। तीन सौ, साढ़े तीन सौ आश्रमवासियोंके लिए रसदका सारा आवश्यक सामान खरीदने और उसको सुरक्षित रखनेमें उनको काफी मेहनत पड़ती थी।

श्री छगनलालभाई अपने बचपनसे ही बापूके पास रहने लगे थे। वे बरसों दक्षिण अफ्रीकामें उनके साथ रहे थे। वहां उन्होंने बापूसे सार्वजनिक सेवाकी दीक्षा प्राप्त की थी। जब बापू दक्षिण अफ्रीकासे वापस हिन्दुस्तान आये, तो श्री छगनलालभाई भी उन्हींके साथ स्वदेश लौटे। बापूने दक्षिण अफ्रीकासे हिन्दुस्तान आनेके बाद अहमदाबादमें रहकर देशसेवा करनेका निश्चय किया। शुरूमें थोड़े समयके लिए वे अहमदाबादके पास बसे कोचरब नामके एक गांवमें किरायेका मकान लेकर वहां अपने सब साथियों सहित रहने और आश्रम-जीवन बिताने लगे। बादमें साबरमती नदीके किनारे आश्रमके लिए नई जमीन मिली और सन् १९१६-१७ में वहां आश्रमकी रचना हुई।

रौंदी-कुचली जा रही है और हम हैं कि निरुपाय भाव
अपने आजके लोक-जीवनकी इस करुणान्तिकाको देख-सह
हैं । गुरुदेव और गांधीके मिलनकी यह पुण्य कथा हमें
स्वरूप और स्वधर्मके प्रति तनिक भी सजग बना पा
परम कारुणिक भगवानकी हम पर बड़ी ही कृपा हो

८

सार्वजनिक धनके प्रखर प्रहरी

बापूने अपनी प्रचण्ड साधनाके बलसे दे
जीवनको अपने समयमें जितना शुद्ध-बुद्ध किया
दिनों देश-विदेशमें शायद ही कोई कर स
विषयमें उनकी उत्कटता और कठोर जागृति
थी, बल्कि चिरस्मरणीय और सदा अन
सार्वजनिक धनके शुद्ध उपयोगके लिए
कालमें कड़ीसे कड़ी साधना की थी
सजगताके साथ इस धनकी रक्षाका
पाईका भी दुरुपयोग उनसे सहा
मामलेमें उनकी और
पाना
क्षेत्रमें
बहु

कड़ा उलाहना दिया। अपने हाथों बिछौना हटा दिया और खाली पटिये पर बैठ गये। साथियोंको सामने बैठा लिया और फिर जो गलती हो गई थी, उसीके बारेमें अपना दिल टटोलते हुए चर्चा करने लगे। सारी रात बीत गई। बापू रह-रहकर लम्बी उसांसें लेते थे और अपने लिए प्रकाश खोजते थे। वीरमगामसे साबरमती तककी सारी यात्रा इसी मनोदशामें पूरी हुई। न बापूने चैनका अनुभव किया, न उनके साथके लोगोंने। महादेवभाईको तो शायद यह लगा होगा कि धरती फट जाती और वे उसमें समा जाते, तो कहीं अच्छा होता!

अनजाने और अचानक अपने एक साथीके हाथों दो टिकट ज्यादा खरीदे गये, इसकी जानकारी मिलते ही बापूने जिस तीव्रताके साथ इस दोषकी गम्भीरताका अनुभव किया और जितनी उत्कटतासे उन्होंने इस दोषका प्रतीकार किया, उसकी याद आते ही बापूकी महानताके प्रति माथा झुक जाता है। ऐसा कठोर आत्म-विश्लेषण, इतनी तीव्र आत्म-ताड़ना और दोष-परिहारके लिए ऐसी उत्कट विह्वलता बापूके अलावा और किसीके जीवनमें देखने-सुननेका कोई अनुभव मुझे न पहले कभी हुआ था, न बादमें आज तक हुआ। बापूकी विलक्षण आत्म-ताड़नाको देखकर मैं तो स्तम्भित ही रह गया।

यही कारण था कि बापू अपने जीवन-कालमें सार्वजनिक सेवाके क्षेत्रमें सेवकोंके लिए आचार-विचारका इतना ऊंचा मान-दण्ड स्थापित करनेमें सफल हुए थे और न केवल देशमें, बल्कि दुनियामें भी दूर-दूर तक उनकी सत्य-विषयक कठोर साधनाकी साख और धाक फैल गई थी। बच्चेसे लेकर बूढ़े

"तुम अपने पाससे क्या दोगे? कैसे दोगे? अब तुम्हारा तुम्हारे पास रह ही क्या गया है? जबसे तुम मेरे पास आये हो, तुमने अपना सब-कुछ देशको दे डाला है। न पैसा तुम्हारे पास है, और न तुम्हारी बुद्धि, शक्ति और समय ही तुम्हारा रह गया है। सब-कुछ देशके लिए समर्पित हो चुका है। घाटेकी पूर्ति करनेके लिए तुम अलगसे समय कहांसे लाओगे? और अलग कमाई कैसे कर सकोगे? इसलिए तुम्हारी इस बातसे मेरे मनको सन्तोष नहीं होता। यह तो एक भारी भूल हम सबसे हो गई है। इसका प्रायश्चित्त हमें करना ही होगा। पता नहीं, भगवान क्यों हमारी ऐसी कड़ी परीक्षा ले रहा है।" आदि-आदि।

आखिर इसी बेचैनीकी और चिन्तन-मंथनकी हालतमें ही आधी रातका समय होने आया। गाड़ी वीरमगाम पहुंची। छोटी लाइनसे उतरकर बड़ी लाइन पर जाना था और उसके तीसरे दरजेके डिब्बेमें बैठनेकी व्यवस्था करनी थी। सबकी यह आन्तरिक इच्छा थी कि अब बापू थोड़ा सो लें तो अच्छा हो। इसलिए बड़ी लाइनके डिब्बेमें सामान जमाते समय रचना ऐसी की गई कि जिससे बापूके लिए एक पलंगनुमा चौड़ा बिछौना तैयार हो जाये और वे उस पर आरामसे सो सकें। सारी व्यवस्था कर चुकनेके बाद साथी बड़ी गाड़ीके छूटनेकी और बापूके डिब्बेमें सवार होनेकी बाट जोहने लगे। गाड़ीने सीटी दी और बापू डिब्बेमें आये। आते ही उन्होंने देखा कि उनके लिए पलंगनुमा बिछावन की गई है। इससे उनका सन्ताप और बढ़ गया। उन्होंने साथियोंको इस रचनाके लिए

कड़ा उलाहना दिया। अपने हाथों बिछौना हटा दिया और खाली पटिये पर बैठ गये। साथियोंको सामने बैठा लिया और फिर जो गलती हो गई थी, उसीके बारेमें अपना दिल टटोलते हुए चर्चा करने लगे। सारी रात बीत गई। बापू रह-रहकर लम्बी उसांसें लेते थे और अपने लिए प्रकाश खोजते थे। वीरमगामसे साबरमती तककी सारी यात्रा इसी मनोदशामें पूरी हुई। न बापूने चैनका अनुभव किया, न उनके साथके लोगोंने। महादेवभाईको तो शायद यह लगा होगा कि धरती फट जाती और वे उसमें समा जाते, तो कहीं अच्छा होता!

अनजाने और अचानक अपने एक साथीके हाथों दो टिकट ज्यादा खरीदे गये, इसकी जानकारी मिलते ही बापूने जिस तीव्रताके साथ इस दोषकी गम्भीरताका अनुभव किया और जितनी उत्कटतासे उन्होंने इस दोषका प्रतीकार किया, उसकी याद आते ही बापूकी महानताके प्रति माथा झुक जाता है। ऐसा कठोर आत्म-विश्लेषण, इतनी तीव्र आत्म-ताड़ना और दोष-परिहारके लिए ऐसी उत्कट विह्वलता बापूके अलावा और किसीके जीवनमें देखने-सुननेका कोई अनुभव मुझे न पहले कभी हुआ था, न बादमें आज तक हुआ। बापूकी विलक्षण आत्म-ताड़नाको देखकर मैं तो स्तम्भित ही रह गया।

यही कारण था कि बापू अपने जीवन-कालमें सार्वजनिक सेवाके क्षेत्रमें सेवकोंके लिए आचार-विचारका इतना ऊंचा मान-दण्ड स्थापित करनेमें सफल हुए थे और न केवल देशमें, बल्कि दुनियामें भी दूर-दूर तक उनकी सत्य-विषयक कठोर साधनाकी साख और धाक फैल गई थी। बच्चेसे लेकर बूढ़े

तक और गरीबसे लेकर अमीर तक हरएकको यह विश्वास हो चुका था कि गांधीके हाथमें पहुंचनेवाला पैसा हर तरह सुरक्षित रहेगा और उसका सही-सही उपयोग होगा। यही कारण था कि बापूको सार्वजनिक कार्यके लिए धनकी कमीका अनुभव कभी हुआ नहीं। धन तो उनके कामके पीछे-पीछे चला ही आता था और धन देनेवाले उन्हें देकर एक प्रकारकी धन्यताका अनुभव करते थे।

अपने समयमें बापूने सार्वजनिक धनके उपयोगके लिए जो पैमाने खड़े किये थे, वे सब हमें उनकी अनमोल विरासतके रूपमें हासिल हुए हैं। उनकी सिद्धियां हमारी भी सिद्धियां बन सकें, तो हम धन्य हो जायें और हमारे हाथोंमें बापूकी विरासत और भी सुशोभित हो उठे। काश, ऐसा हो!

९

'मेरा दुःख, मेरी शर्म' के लेखक

सन् १९२१ की बात है। गांधीजीके साबरमतीवाले सत्याग्रह-आश्रममें हम ३००–३५० साथी एक साथ रहते थे और एक ही जगह खाते थे। देशके कोने-कोनेसे ये सारे भाई-बहन वहां इकट्ठा हुए थे। सब गांधीजीकी छत्रछायामें रहकर स्वराज्य-प्राप्तिकी शिक्षा-दीक्षा लेनेमें लगे थे। देश-विदेशके यात्रियों और दर्शनार्थियोंका तांता भी लगा ही रहता था। गांधीजीने उन दिनों संयुक्त रसोईका प्रयोग बड़े आग्र[illegible]

साथ चलाया था। सब लोग अपने-अपने हिस्सेका काम बारी-बारीसे अपने समय पर किया करते थे। बापू भी अपने हिस्सेका काम करनेके लिए समय पर पहुंच जाते थे।

उन दिनों आश्रमके कोठारकी व्यवस्था गांधीजीके एक भतीजे श्री छगनलालभाई गांधीके जिम्मे थी। साबरमती आश्रमसे अहमदाबाद नगर काफी दूर था। आश्रमकी जरूरतका सारा सामान वहींसे लाना होता था। आश्रमकी बैलगाड़ीमें सामान लाया जाता था। जरूरी सामान खरीदनेका सारा काम श्री छगनलालभाई गांधी ही किया करते थे। तीन सौ, साढ़े तीन सौ आश्रमवासियोंके लिए रसदका सारा आवश्यक सामान खरीदने और उसको सुरक्षित रखनेमें उनको काफी मेहनत पड़ती थी।

श्री छगनलालभाई अपने बचपनसे ही बापूके पास रहने लगे थे। वे वर्षों दक्षिण अफ्रीकामें उनके साथ रहे थे। वहीं उन्होंने बापूसे सार्वजनिक सेवाकी दीक्षा प्राप्त की थी। जब बापू दक्षिण अफ्रीकासे वापस हिन्दुस्तान आये, तो श्री छगनलालभाई भी उन्हींके साथ स्वदेश लौटे। बापूने दक्षिण अफ्रीकासे हिन्दुस्तान आनेके बाद अहमदाबादमें रहकर देशसेवा करनेका निश्चय किया। शुरूमें थोड़े समयके लिए वे अहमदाबादके पास बसे कोचरब नामके एक गांवमें किरायेका मकान लेकर वहां अपने सब साथियों सहित रहने और आश्रम-जीवन बिताने लगे। बादमें साबरमती नदीके किनारे आश्रमके लिए नई जमीन मिली और सन् १९१६-१७ में वहां आश्रमकी रचना हुई।

तक और गरीबसे लेकर अमीर तक हरएकको यह विश्वास हो चुका था कि गांधीके हाथमें पहुंचनेवाला पैसा हर तरह सुरक्षित रहेगा और उसका सही-सही उपयोग होगा। यही कारण था कि बापूको सार्वजनिक कार्यके लिए धनकी कमीका अनुभव कभी हुआ नहीं। धन तो उनके कामके पीछे-पीछे चला ही आता था और धन देनेवाले उन्हें देकर एक प्रकारकी धन्यताका अनुभव करते थे।

अपने समयमें बापूने सार्वजनिक धनके उपयोगके लिए जो पैमाने खड़े किये थे, वे सब हमें उनकी अनमोल विरासतके रूपमें हासिल हुए हैं। उनकी सिद्धियां हमारी भी सिद्धियां बन सकें, तो हम धन्य हो जायें और हमारे हाथोंमें बापूकी विरासत और भी सुशोभित हो उठे। काश, ऐसा हो!

९

'मेरा दुःख, मेरी शर्म' के लेखक

सन् १९२९की बात है। गांधीजीके साबरमतीवाले सत्याग्रह-आश्रममें हम ३००–३५० साथी एक साथ रहते थे और एक ही जगह खाते थे। देशके कोने-कोनेसे ये सैकड़ों भाई-बहन वहां इकट्ठा हुए थे। सब गांधीजीकी छत्रछायामें रहकर स्वराज्य-प्राप्तिकी शिक्षा-दीक्षा लेनेमें लगे थे। देश-विदेशके यात्रियों और दर्शनार्थियोंका तांता भी लगा ही रहता था। गांधीजीने उन दिनों संयुक्त रसोईका प्रयोग बड़े आग्रहसे

साथ चलाया था। सब लोग अपने-अपने हिस्सेका काम बारी-बारीसे अपने समय पर किया करते थे। बापू भी अपने हिस्सेका काम करनेके लिए समय पर पहुंच जाते थे।

उन दिनों आश्रमके कोठारकी व्यवस्था गांधीजीके एक भतीजे श्री छगनलालभाई गांधीके जिम्मे थी। साबरमती आश्रमसे अहमदाबाद नगर काफी दूर था। आश्रमकी जरूरतका सारा सामान वहींसे लाना होता था। आश्रमकी बैलगाड़ीमें सामान लाया जाता था। जरूरी सामान खरीदनेका सारा काम श्री छगनलालभाई गांधी ही किया करते थे। तीन सौ, साढ़े तीन सौ आश्रमवासियोंके लिए रसदका सारा आवश्यक सामान खरीदने और उसको सुरक्षित रखनेमें उनको काफी मेहनत पड़ती थी।

श्री छगनलालभाई अपने बचपनसे ही बापूके पास रहने लगे थे। वे वर्षों दक्षिण अफ्रीकामें उनके साथ रहे थे। वहीं उन्होंने बापूसे सार्वजनिक सेवाकी दीक्षा प्राप्त की थी। जब बापू दक्षिण अफ्रीकासे वापस हिन्दुस्तान आये, तो श्री छगनलालभाई भी उन्हींके साथ स्वदेश लौटे। बापूने दक्षिण अफ्रीकासे हिन्दुस्तान आनेके बाद अहमदाबादमें रहकर देशसेवा करनेका निश्चय किया। शुरूमें थोड़े समयके लिए वे अहमदाबादके पास बसे कोचरब नामके एक गांवमें किरायेका मकान लेकर वहां अपने सब साथियों सहित रहने और आश्रम-जीवन बिताने लगे। बादमें साबरमती नदीके किनारे आश्रमके लिए नई जमीन मिली और सन् १९१६-१७ में वहां आश्रमकी रचना हुई।

बापूने इस आश्रमके लिए कुछ नियम बनाये और उन नियमोंके अनुसार वे अपने साथियों सहित वहां रहने और काम करने लगे। इन नियमोंमें एक नियम अपरिग्रहका भी था। आश्रमवासीको प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि वह अपने पास अपनी कोई सम्पत्ति नहीं रखेगा और जो कुछ उसके पास सम्पत्तिके रूपमें होगा, उसे वह आश्रमको सौंप देगा। अपने निर्वाहके लिए जो कुछ जरूरी होगा, सो आश्रमकी मर्यादाके अनुसार उसे आश्रमसे मिलता रहेगा। उन दिनों बापूने निर्वाह-व्ययकी भी अधिकसे अधिक मर्यादा निश्चित कर दी थी। किसीको रु० ७५ मासिकसे अधिक निर्वाह-व्यय नहीं दिया जाता था।

श्री छगनलालभाई गांधी अपने परिवारके साथ आश्रममें रहते थे। उनकी पत्नी श्रीमती काशीबहन और उनके दो पुत्र श्री प्रभुदास गांधी और श्री कृष्णदास गांधी उन दिनों आश्रममें ही रहते थे और ये सब आश्रम-परिवारके अभिन्न अंग थे।

१९२९ के अप्रैल महीनेकी बात है। एक दिन आश्रमके तत्कालीन मंत्री श्री छगनलालजी जोशीने बापूको खबर दी कि श्री छगनलालभाई गांधीके जिम्मे कोठारका जो काम है, उसके हिसाबमें गड़बड़ पाई गई है।

उस दिन शामकी प्रार्थनाके बाद बापूने व्यथित हृदयसे सारे आश्रम-परिवारको बताया कि आज अपने आश्रममें एक भारी पाप प्रकट हुआ है। छगनलाल गांधीके हिसाबमें गड़बड़

पाई गई है। उन्होंने असत्य आचरण किया है। हमारा संकल्प रहा है कि हम इस आश्रममें सत्यका आचरण करेंगे और उसका आग्रह रखेंगे। इसी विचारको सामने रखकर हमने आश्रमका नाम सत्याग्रह-आश्रम रखा था। लेकिन अब इस गड़बड़के सामने आ जानेके बाद हमें कोई अधिकार नहीं रहा कि हम इस नामको बनाये रखें। इसलिए आजसे हम आश्रमको उद्योग-मन्दिर कहेंगे और आगेसे हमारी यह प्रार्थना-भूमि ही सत्याग्रह-आश्रम कही जायेगी।

इस आशयकी जानकारी देनेके बाद बापू हृदय-कुंजवाले अपने निवास-स्थान पर पहुंच गये और वहां श्री छगनलालभाई गांधी सहित आश्रमके सभी पुराने साथियोंको लेकर बैठ गये। बापूका मन उस समय बहुत खिन्न और विकल था। चेहरे पर गम्भीर उदासी छाई हुई थी। बापूने बड़ी तीव्रताके साथ आत्म-निरीक्षण शुरू किया। उन्होंने अपने भतीजे श्री छगनलाल गांधीके दोषको अपने ही किसी दोषका प्रतिबिम्ब माना और इसके लिए वे अपने आपको कठोरतापूर्वक कोसने लगे। बापूकी विकलताने सबको विकल बना दिया। घण्टों चर्चा चली। थोड़ी आनाकानीके बाद श्री छगनलालभाई गांधीने अपनी गलती कबूल की। उनका मन पश्चात्तापसे भर उठा। वे फूट-फूटकर रोने लगे। सारे समाज पर करुण विषादकी गहरी छाया घिर आई। अभी छगनलालभाई वाली समस्या पर चर्चा चल ही रही थी कि इतनेमें आश्रमवासियोंमें से ही किसीने बापूके सामने एक और प्रश्न रख दिया।

बापूको बताया गया कि कुछ दिन पहले बाहरके कुछ अपरिचित भाई आश्रम देखने आये थे। गांधीजीके दर्शनोंके बाद उन्होंने आश्रममें कस्तूरबाके भी दर्शन किये और अपनी तरफसे भेंट-स्वरूप चार रुपये कस्तूरबाको दिये। आश्रमके नियमके अनुसार बाको यह रकम तुरन्त ही आश्रमके दफ्तरमें जमा करा देनी चाहिये थी, किन्तु वे जमा नहीं करा पाई थीं। पूछताछसे पता चला कि बाने बादमें ये चार रुपये आश्रमके दफ्तरमें जमा भी करा दिये थे। किन्तु गांधीजीको इससे सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने इस मामलेमें बाको दोषी माना और उसी रात उनसे वचन लिया कि अगर आगे कभी उनसे ऐसा कोई दोष हुआ, या पुराना कोई दोष प्रकट हुआ, तो वे गांधीजीको और आश्रमको छोड़ देंगी!

इस तरह उस रात गांधीजीके सान्निध्यमें घण्टों आत्म-शुद्धिका यह यज्ञ चलता रहा और इसमें सबके आत्म-शोधनकी आहुतियां पड़ती रहीं। पिछली रातको २॥–३ बजे तक यह मन्थन-चिन्तन चला। फिर गांधीजीने सब साथियोंको बिदा कर दिया और स्वयं कागज-कलम लेकर एक लेख लिखने बैठ गये। आश्रमके जीवनमें और समूचे देशके जीवनमें गांधीजीके इस लेखने एक ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त किया है। गांधीजीको जानने-समझनेवाले जिन-जिन भाइयों और बहनोंने देश-विदेशमें [illegible] यह लेख पढ़ा, वे सभी स्तम्भित और चकित रह [illegible] बहुतोंका दिल दुःखसे भर गया। कुछको गांधीजी पर [illegible] भी आया।

'मेरा दुःख, मेरी शर्म' शीर्षक अपने इस मार्मिक और ऐतिहासिक लेख* में गांधीजीने अपने भतीजे श्री छगनलाल गांधी और अपनी पत्नी श्रीमती कस्तूरबाई गांधीके दोषोंकी स्पष्ट चर्चा की और जनता-जनार्दनके सामने अपना हृदय उंडेलकर रख दिया। स्व० श्रीमती सरोजिनी नायडूने गांधीजीका यह लेख हैदराबाद (दक्षिण) में पढ़ा। लेखमें कस्तूरबा पर लगाये गये आरोपोंकी बात पढकर उन्हें गहरी चोट लगी। उनका मन गुस्सेसे भर गया। उन्होंने इसे केवल कस्तूरबाका नहीं, बल्कि भारतकी स्त्री-जातिका अपमान माना और वे कस्तूरबाको आश्वस्त करनेके लिए हैदराबादसे चलकर साबरमती पहुंचीं। सीधे बाके पास चली गईं और उन्हें हिम्मत बंधाती रही। बापूके लिए उस समय उनका मन बहुत कड़वा हो गया था। वे उनसे मिलना भी नहीं चाहती थीं। लेकिन जब बापूको पता चला कि सरोजिनीदेवी आई हैं, बाके पास बैठी हैं, उनसे तो मिलना भी नहीं चाहती हैं, बहुत नाराज हैं, तो गांधीजी खुद ही हंसते-हंसते उनके पास चले गये और उनके कुशल-समाचार पूछने लगे। लेकिन वे तो भरी हुई थीं। गांधीजीको देखते ही उबल पड़ीं और उन्होंने उनको खूब आड़े हाथों लिया। गांधीजी शान्त, प्रसन्न भावसे उनकी गुस्सेसे भरी बातोंको सुनते रहे। जब सरोजिनीदेवी अपने मनका सारा गुबार निकाल चुकीं, तो बापूने बड़ी सहजतासे और

* यह लेख 'हिन्दी नवजीवन' के ता० ११-४-'२९ के अंकमें अग्रलेखके रूपमें छपा है और इस पुस्तकके अन्तमें 'परिशिष्ट' के रूपमें दिया गया है।

हंसते-हंसते उनसे कुछ इस प्रकार कहा: "सरोजिनीदेवी! आजकी यह घड़ी इस तरह नाराज होनेकी नहीं, बल्कि खुशीसे नाचनेकी है। तुम यह समझ लो कि भगवानने हम पर बहुत बड़ी कृपा की। अगर वह मुझसे यह लेख न लिखवाता, और आश्रममें जो दोष प्रकट हुए थे, मैं उन्हें दबाकर बैठ जाता, तो यह आश्रम आश्रम न रहता। नरकका धाम बन जाता और इसमें रहनेवाले हम सब अन्दर ही अन्दर सड़ने लगते। मैं तो मानता हूं कि मुझसे यह लेख लिखवाकर भगवानने हम सबको उबार लिया है। फूलकी तरह हलका बना दिया है। अब न छगनलाल कभी ऐसा कोई दोष कर सकेगा, न कस्तूरबा, न आश्रमके दूसरे कोई साथी और न देशकी स्वतंत्रताके संग्राममें लगे हुए अन्य देशवासी। इसलिए मैं तो कहता हूं कि तुम्हारी नाराजी अब खुशीमें बदलनी चाहिये और हम सबको भगवानकी इस महान कृपाके लिए उसके गुण गाने चाहिये।"

जो सरोजिनीदेवी मनमें इतनी कड़वाहट लेकर आई थीं, बापूके मुंहसे निकले इन बोलोंको सुननेके बाद वे गद्गद हो उठीं और बापूकी महाशयताके आगे उनका माथा झुक गया।

बापूकी धारणा यह थी कि मनुष्यको अपने दोषोंके निवारणके लिए अपनी आत्माके निकट उपस्थित होना चाहिये और स्वयं ही अपने मनके मैलको परिताप और पश्चातापके आंसुओंसे धोकर मनको निर्मल और निर्दोष बना लेना चाहिये। आत्माकी अदालतसे बढ़कर और कोई अदालत उन्हें [illegible] नहीं थी। यही कारण था कि वे अपने मुकदमों

सूक्ष्म दोषको अपनी ही कड़ीसे कड़ी कसौटी पर कसते थे और स्वयं अपनेको सूली पर चढ़ा देनेमें कभी हिचकते नहीं थे। जैसा व्यवहार वे अपने लिए करते थे वैसा ही अपनोंके लिए भी। और, उनकी दृष्टिमें पराया तो कोई रह ही नहीं गया था, इसलिए वे तो सबको स्वजन ही मानते थे और स्वजनोंके छोटेसे छोटे दोषोंके लिए भी अपनेको जिम्मेदार समझकर उन दोषोंके निवारणके लिए अक्सर स्वयं ही प्रायश्चित्त कर लिया करते थे। यही कारण था कि बापूके पास रहनेवालोंको हमेशा बहुत ही चौकन्ना रहना पड़ता था और प्रायः उनकी प्रखर साधनाके तापमें तपना भी पड़ता था। जो इस तापको सह नहीं पाते थे, वे उनसे दूर चले जाते थे। फिर भी जीवनके अन्तिम क्षण तक मनसे तो वे उनके बने ही रहते थे। जो उनके तापकी आंचको सहकर 'हेमखेम' पार निकल आते थे, वे उनके निकट रहकर उनकी मण्डलीमें कुन्दनकी तरह दमकते रहते थे और साथके सब संगाथियोंको अपने जीवनके पावन प्रकाशका लाभ दिया करते थे।

बापूकी पतित-पावनताका तो कोई पार था ही नहीं। गिरे हुओंको हाथका सहारा देकर ऊपर उठाने और छातीसे लगाने तथा आगे बढ़ानेकी उनकी भावना इतनी प्रबल थी कि उनके निकट रहकर गिरा हुआ भी थोड़े समयमें उनसे हिम्मत पाकर ऊपर उठ जाता था और अपनेको धन्य कर लेता था।

सूक्ष्म दोषको अपनी ही कड़ीसे कड़ी कसौटी पर कसते थे और स्वयं अपनेको सूली पर चढ़ा देनेमें कभी हिचकते नहीं थे। जैसा व्यवहार वे अपने लिए करते थे वैसा ही अपनोंके लिए भी। और, उनकी दृष्टिमें पराया तो कोई रह ही नहीं गया था, इसलिए वे तो सबको स्वजन ही मानते थे और स्वजनोंके छोटेसे छोटे दोषोंके लिए भी अपनेको जिम्मेदार समझकर उन दोषोंके निवारणके लिए अक्सर स्वयं ही प्रायश्चित्त कर लिया करते थे। यही कारण था कि बापूके पास रहनेवालोंको हमेशा बहुत ही चौकन्ना रहना पड़ता था और प्रायः उनकी प्रखर साधनाके तापमें तपना भी पड़ता था। जो इस तापको सह नहीं पाते थे, वे उनसे दूर चले जाते थे। फिर भी जीवनके अन्तिम क्षण तक मनसे तो वे उनके बने ही रहते थे। जो उनके तापकी आंचको सहकर 'हेमखेम' पार निकल आते थे, वे उनके निकट रहकर उनकी मण्डलीमें कुन्दनकी तरह दमकते रहते थे और साथके सब संगायियोंको अपने जीवनके पावन प्रकाशका लाभ दिया करते थे।

बापूकी पतित-पावनताका तो कोई पार था ही नहीं। गिरे हुओंको हाथका सहारा देकर ऊपर उठाने और छातीसे लगाने तथा आगे बढ़ानेकी उनकी भावना इतनी प्रबल थी कि उनके निकट रहकर गिरा हुआ भी थोड़े समयमें उनसे हिम्मत पाकर ऊपर उठ जाता था और अपनेको धन्य कर लेता था।

साथियोंका एकनिष्ठ होना बहुत आवश्यक है। एकनिष्ठाके लिए ब्रह्मचर्य उन्हें अनिवार्य लगा। इसलिए वे अपने आसपास ब्रह्मचर्यका वातावरण बनानेमें अपनी पूरी शक्तिसे जुट गये। क्वांरोंको तो वे ब्रह्मचर्यका अपना विचार समझाते ही थे, लेकिन इसके साथ ही जो विवाहित साथी उनके पास देशकार्यकी दृष्टिसे आकर रहे थे, उनको भी वे ब्रह्मचर्यसे रहनेके लिए प्रेरित और प्रोत्साहित करते थे। वे प्रायः कहा करते थे कि गुलाम देशके नागरिकोंको गुलाम रहते हुए अपनी संतानके रूपमें नये गुलामोंको जन्म देनेसे बचना चाहिये।

अपने इन्हीं विचारोंसे प्रेरित होकर बापूने १९२४–'२५ के जमानेसे लेकर १९४०–'४२ के जमाने तक विवाहितोंमें भी ब्रह्मचर्यकी आस्था और निष्ठा उत्पन्न करनेके लिए भारी प्रयत्न किये। जब १९२९ में मैं साबरमतीके सत्याग्रह-आश्रममें पहुंचा, तो मैंने देखा कि उन दिनों आश्रमके वातावरणमें विवाहितोंके ब्रह्मचर्यकी चर्चा जोरों पर थी। बापूके कई पुराने साथी, जो अपने परिवारके साथ आश्रममें स्थायी रूपसे रहने लगे थे, निष्ठापूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन करनेकी कठिन साधनामें निरत थे। सर्व श्री किशोरलालभाई मशरूवाला और उनकी धर्मपत्नी गोमतीबहन मशरूवाला, रमणीकलालभाई मोदी और तारावहन मोदी, पन्नालाल झवेरी और नानीबेन झवेरी, आदि कुछ सज्जनभाइयोंके नाम तो आश्रमके इतिहासमें विवाहित ब्रह्मचर्यके निष्ठावान साधकोंके रूपमें अंकित हो चुके हैं। उन दिनों और भी कई ऐसे जोड़े आश्रममें थे, जो ब्रह्मचर्यका निष्ठा-पूर्वक पालन करनेके लिए उत्सुक हुए थे और प्रयत्न कर रहे थे।

ऐसे एक विवाहित युगलको ब्रह्मचर्यकी अपनी साधनामें डटे रहनेकी प्रेरणा बापूकी ओरसे निरंतर मिलती रहती थी। आरम्भमें पति-पत्नी दोनों आश्रममें रहकर बापूकी छत्रछायामें अपने जीवनको संयत और समुन्नत बनानेका प्रयत्न करते रहे। बादमें बहन आश्रममें रहीं, भाईको खादीका काम बढ़ाने और चलानेके लिए कश्मीर जाना पड़ा। वहां उन्होंने ऊनी खादीके क्षेत्रमें बड़ी मेहनतसे सुन्दर काम किया। अपने समयके अच्छे कुशल और सूझ-बूझवाले कार्यकर्ताओंमें उनकी गिनती होने लगी। लेकिन कुछ समयके बाद बापूके पास उनके बारेमे चिन्ताजनक समाचार आने लगे। बापूके सामने जिस ब्रह्मचर्य-व्रतकी दीक्षा लेकर वे कश्मीर गये थे, उसकी रक्षा करना उनके लिए वहाके वातावरणमें सम्भव न हुआ। बापूको उनके चारित्रिक पतनकी खबरें मिलने लगीं। इधर आश्रममें उनकी पत्नीको भी पता चला कि प्रवासी पति अपने व्रतको रक्षा नही कर पा रहे हैं। बापूके सामने एक समस्या खड़ी हो गई। जब बापूने देखा कि कश्मीर गये हुए भाई अपने स्वभावकी दुर्बलताके कारण ब्रह्मचर्यकी रक्षा करनेमें असफल हो रहे हैं, तो उन्होंने एक प्रयोगवीरके-से साहसके साथ अपने उन साथीको सलाह दी कि अगर वे अपने मन पर काबू नहीं रख सकते हैं, तो अपने लायक किसी अन्य स्त्रीसे विधिवत् विवाह कर लें और वैवाहिक जीवन बितावें। चरित्र-भ्रष्ट होनेसे विवाहकी मर्यादामें बंधकर जीवन बिताना अधिक श्रेयस्कर है। दूसरी तरफ बापूने कश्मीर गये हुए अपने उक्त साथीको पत्नीको, जो उन दिनों आश्रममें ही रहती थीं, सलाह

साथियोंका एकनिष्ठ होना बहुत आवश्यक है। एकनिष्ठाके लिए ब्रह्मचर्य उन्हें अनिवार्य लगा। इसलिए वे अपने आसपास ब्रह्मचर्यका वातावरण बनानेमें अपनी पूरी शक्तिसे जुट गये। क्वांरोंको तो वे ब्रह्मचर्यका अपना विचार समझाते ही थे, लेकिन इसके साथ ही जो विवाहित साथी उनके पास देशकार्यकी दृष्टिसे आकर रहे थे, उनको भी वे ब्रह्मचर्यसे रहनेके लिए प्रेरित और प्रोत्साहित करते थे। वे प्रायः कहा करते थे कि गुलाम देशके नागरिकोंको गुलाम रहते हुए अपनी संतानके रूपमें नये गुलामोंको जन्म देनेसे बचना चाहिये।

अपने इन्हीं विचारोंसे प्रेरित होकर बापूने १९२४-'२५ के जमानेसे लेकर १९४०-'४२ के जमाने तक विवाहितोंमें भी ब्रह्मचर्यकी आस्था और निष्ठा उत्पन्न करनेके लिए भारी प्रयत्न किये। जब १९२९ में मैं साबरमतीके सत्याग्रह-आश्रममें पहुंचा, तो मैंने देखा कि उन दिनों आश्रमके वातावरणमें विवाहितोंमें ब्रह्मचर्यकी चर्चा जोरों पर थी। बापूके कई पुराने साथी, जो अपने परिवारके साथ आश्रममें स्थायी रूपसे रहने लगे थे, निष्ठापूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन करनेकी कठिन साधनामें निरत थे। स्व॰ श्री किशोरलालभाई मशरूवाला और उनकी धर्मपत्नी गोमतीबहन मशरूवाला, रमणीकलालभाई मोदी और ताराबहन मोदी, पन्नालाल झवेरी और नानीबेन झवेरी, और कुछ महानुभावोंके नाम तो आश्रमके इतिहासमें [illegible] ब्रह्मचर्यके निष्ठावान साधकोंके रूपमें अंकित हो चुके हैं। उन दिनों और भी कई ऐसे दंपती आश्रममें थे, जो ब्रह्मचर्यकी दिशामें कदम बढ़ानेके लिए उत्सुक हो रहे थे और प्रयत्न कर रहे थे।

ऐसे एक विवाहित युगलको ब्रह्मचर्यकी अपनी साधनामें डटे रहनेकी प्रेरणा बापूकी ओरसे निरंतर मिलती रहती थी। आरम्भमें पति-पत्नी दोनों आश्रममें रहकर बापूकी छत्रछायामें अपने जीवनको संयत और समुन्नत बनानेका प्रयत्न करते रहे। बादमें बहन आश्रममें रहीं, भाईको खादीका काम बढ़ाने और चलानेके लिए कश्मीर जाना पड़ा। वहां उन्होंने ऊनी खादीके क्षेत्रमें बड़ी मेहनतसे सुन्दर काम किया। अपने समयके अच्छे कुशल और सूझ-बूझवाले कार्यकर्ताओंमें उनकी गिनती होने लगी। लेकिन कुछ समयके बाद बापूके पास उनके बारेमें चिन्ताजनक समाचार आने लगे। बापूके सामने जिस ब्रह्मचर्य-व्रतकी दीक्षा लेकर वे कश्मीर गये थे, उसकी रक्षा करना उनके लिए वहांके वातावरणमें सम्भव न हुआ। बापूको उनके चारित्रिक पतनकी खबरें मिलने लगीं। इधर आश्रममें उनकी पत्नीको भी पता चला कि प्रवासी पति अपने व्रतकी रक्षा नहीं कर पा रहे हैं। बापूके सामने एक समस्या खड़ी हो गई। जब बापूने देखा कि कश्मीर गये हुए भाई अपने स्वभावकी दुर्बलताके कारण ब्रह्मचर्यकी रक्षा करनेमें असफल हो रहे हैं, तो उन्होंने एक प्रयोगवीरके-से साहसके साथ अपने उन साथीको सलाह दी कि अगर वे अपने मन पर काबू नहीं रख सकते हैं, तो अपने लायक किसी अन्य स्त्रीसे विधिवत् विवाह कर लें और वैवाहिक जीवन बितावें। चरित्र-भ्रष्ट होनेसे विवाहकी मर्यादामें बंधकर जीवन बिताना अधिक श्रेयस्कर है। दूसरी तरफ बापूने कश्मीर गये हुए अपने उक्त साथीकी पत्नीको, जो उन दिनों आश्रममें ही रहती थीं, सलाह

साथियोंका एकनिष्ठ होना बहुत आवश्यक है। एकनिष्ठाके लिए ब्रह्मचर्य उन्हें अनिवार्य लगा। इसलिए वे अपने आसपास ब्रह्मचर्यका वातावरण बनानेमें अपनी पूरी शक्तिसे जुट गये। क्वांरोंको तो वे ब्रह्मचर्यका अपना विचार समझाते ही थे, लेकिन इसके साथ ही जो विवाहित साथी उनके पास देशकार्यकी दृष्टिसे आकर रहे थे, उनको भी वे ब्रह्मचर्यसे रहनेके लिए प्रेरित और प्रोत्साहित करते थे। वे प्रायः कहा करते थे कि गुलाम देशके नागरिकोंको गुलाम रहते हुए अपनी संतानके रूपमें नये गुलामोंको जन्म देनेसे बचना चाहिये।

अपने इन्हीं विचारोंसे प्रेरित होकर बापूने १९२४–'२५ के जमानेसे लेकर १९४०–'४२ के जमाने तक विवाहितोंमें भी ब्रह्मचर्यकी आस्था और निष्ठा उत्पन्न करनेके लिए भारी प्रयत्न किये। जब १९२९ में मैं साबरमतीके सत्याग्रह-आश्रममें पहुंचा, तो मैंने देखा कि उन दिनों आश्रमके वातावरणमें विवाहितोंके ब्रह्मचर्यकी चर्चा जोरों पर थी। बापूके कई पुराने साथी, जो अपने परिवारके साथ आश्रममें स्थायी रूपसे रहने लगे थे, निष्ठापूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन करनेकी कठिन साधनामें निरत थे। स्व० श्री किशोरलालभाई मशरूवाला और उनकी धर्मपत्नी गोमतीबहन मशरूवाला, रमणीकलालभाई मोदी और तारावहन मोदी, पन्नालाल झवेरी और नानीबेन झवेरी, आदि कुछ सज्जनोंके नाम तो आश्रमके इतिहासमें विवाहित ब्रह्मचर्यके निष्ठावान साधकोंके रूपमें अंकित हो चुके हैं। उन दिनों और भी कई ऐसे जोड़े आश्रममें थे, जो ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन करनेके लिए उत्सुक रहते थे और प्रयत्न करते थे।

ऐसे एक विवाहित युगलको ब्रह्मचर्यकी अपनी साधनामें डटे रहनेकी प्रेरणा बापूकी ओरसे निरंतर मिलती रहती थी। आरम्भमें पति-पत्नी दोनों आश्रममें रहकर बापूकी छत्रछायामें अपने जीवनको संयत और समुन्नत बनानेका प्रयत्न करते रहे। बादमें बहन आश्रममें रही, भाईको खादीका काम बढाने और चलानेके लिए कश्मीर जाना पड़ा। वहां उन्होंने ऊनी खादीके क्षेत्रमें बडी मेहनतसे सुन्दर काम किया। अपने समयके अच्छे कुशल और सूझ-बूझवाले कार्यकर्ताओंमें उनकी गिनती होने लगी। लेकिन कुछ समयके बाद बापूके पास उनके बारेमें चिन्ताजनक समाचार आने लगे। बापूके सामने जिस ब्रह्मचर्य-व्रतकी दीक्षा लेकर वे कश्मीर गये थे, उसकी रक्षा करना उनके लिए वहांके वातावरणमें सम्भव न हुआ। बापूको उनके चारित्रिक पतनकी खबरें मिलने लगीं। इधर आश्रममें उनकी पत्नीको भी पता चला कि प्रवासी पति अपने व्रतकी रक्षा नहीं कर पा रहे हैं। बापूके सामने एक समस्या खडी हो गई। जब बापूने देखा कि कश्मीर गये हुए भाई अपने स्वभावकी दुर्बलताके कारण ब्रह्मचर्यकी रक्षा करनेमें असफल हो रहे हैं, तो उन्होंने एक प्रयोगवीरके-से साहसके साथ अपने उन साथीको सलाह दी कि अगर वे अपने मन पर काबू नहीं रख सकते हैं, तो अपने लायक किसी अन्य स्त्रीसे विधिवत् विवाह कर लें और वैवाहिक जीवन बितावें। चरित्र-भ्रष्ट होनेसे विवाहकी मर्यादामें बंधकर जीवन बिताना अधिक श्रेयस्कर है। दूसरी तरफ बापूने कश्मीर गये हुए अपने उक्त साथीकी पत्नीको, जो उन दिनों आश्रममें ही रहती थीं, सलाह

साथियोंका एकनिष्ठ होना बहुत आवश्यक है। एकनिष्ठाके लिए ब्रह्मचर्य उन्हें अनिवार्य लगा। इसलिए वे अपने आसपास ब्रह्मचर्यका वातावरण बनानेमें अपनी पूरी शक्तिसे जुट गये। क्वांरोंको तो वे ब्रह्मचर्यका अपना विचार समझाते ही थे, लेकिन इसके साथ ही जो विवाहित साथी उनके पास देशकार्यकी दृष्टिसे आकर रहे थे, उनको भी वे ब्रह्मचर्यसे रहनेके लिए प्रेरित और प्रोत्साहित करते थे। वे प्रायः कहा करते थे कि गुलाम देशके नागरिकोंको गुलाम रहते हुए अपनी संतानके रूपमें नये गुलामोंको जन्म देनेसे बचना चाहिये।

अपने इन्हीं विचारोंसे प्रेरित होकर बापूने १९२४-'२५ के जमानेसे लेकर १९४०-'४२ के जमाने तक विवाहितोंमें भी ब्रह्मचर्यकी आस्था और निष्ठा उत्पन्न करनेके लिए भारी प्रयत्न किये। जब १९२९ में मैं साबरमतीके सत्याग्रह-आश्रममें पहुंचा, तो मैंने देखा कि उन दिनों आश्रमके वातावरणमें विवाहितोंमें ब्रह्मचर्यकी चर्चा जोरों पर थी। बापूके कई पुराने साथी, जो अपने परिवारके साथ आश्रममें स्थायी रूपसे रहते थे, थे, निष्ठापूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन करनेकी कठिन साधनामें निरत थे। स्व० श्री किशोरलालभाई मशरूवाला और उनकी धर्मपत्नी गोमतीबहन मशरूवाला, रमणीकलालभाई मोदी और ताराबहन मोदी, पन्नालाल झवेरी और नानीबेन झवेरी, और कुछ महानुभावोंके नाम तो आश्रमके इतिहासमें विवाहित [illegible] के निष्ठावान साधकोंके रूपमें अंकित हो चुके हैं। [illegible] [illegible] भी कई ऐसे जोड़े आश्रममें थे, जो ब्रह्मचर्यकी दिशामें [illegible] के लिए उत्सुक हुए थे और प्रयत्न कर रहे थे।

ऐसे एक विवाहित युगलको ब्रह्मचर्यकी अपनी साधनामें डटे रहनेकी प्रेरणा बापूकी ओरसे निरंतर मिलती रहती थी। आरम्भमें पति-पत्नी दोनों आश्रममें रहकर बापूकी छत्रछायामें अपने जीवनको संयत और समुन्नत बनानेका प्रयत्न करते रहे। बादमें बहन आश्रममें रहीं, भाईको खादीका काम बढ़ाने और चलानेके लिए कश्मीर जाना पड़ा। वहां उन्होंने ऊनी खादीके क्षेत्रमें बड़ी मेहनतसे सुन्दर काम किया। अपने समयके अच्छे कुशल और सूझ-बूझवाले कार्यकर्ताओंमें उनकी गिनती होने लगी। लेकिन कुछ समयके बाद बापूके पास उनके बारेमें चिन्ताजनक समाचार आने लगे। बापूके सामने जिस ब्रह्मचर्य-व्रतकी दीक्षा लेकर वे कश्मीर गये थे, उसकी रक्षा करना उनके लिए वहांके वातावरणमें सम्भव न हुआ। बापूको उनके चारित्रिक पतनकी खबरें मिलने लगीं। इधर आश्रममें उनकी पत्नीको भी पता चला कि प्रवासी पति अपने व्रतकी रक्षा नहीं कर पा रहे हैं। बापूके सामने एक समस्या खड़ी हो गई। जब बापूने देखा कि कश्मीर गये हुए भाई अपने स्वभावकी दुर्बलताके कारण ब्रह्मचर्यकी रक्षा करनेमें असफल हो रहे हैं, तो उन्होंने एक प्रयोगवीरके-से साहसके साथ अपने उन साथीको सलाह दी कि अगर वे अपने मन पर काबू नहीं रख सकते हैं, तो अपने लायक किसी अन्य स्त्रीसे विधिवत् विवाह कर लें और वैवाहिक जीवन बितावें। चरित्र-भ्रष्ट होनेसे विवाहकी मर्यादामें बंधकर जीवन बिताना अधिक श्रेयस्कर है। दूसरी तरफ बापूने कश्मीर गये हुए अपने उक्त साथीकी पत्नीको, जो उन दिनों आश्रममें ही रहती थीं, सलाह

दी कि वे अपने पतिके लिए दूसरी कोई सुयोग्य पत्नी खोज दें और स्वयं उनसे किसी तरहका सम्बन्ध न रखकर अपनी जीविकाके लिए अपने पैरों पर खड़ी हो जायें।

जिन दिनों बापू अपने आश्रममें ब्रह्मचर्यके क्षेत्रमें ऐसे अद्भुत प्रयोग कर रहे थे, उन दिनों देशमें विवाहित स्त्री-पुरुषोंके बीच दूसरा ही प्रवाह बह रहा था। बापू अपनी शक्तिभर प्रवाहके विपरीत चलनेमें और साथियोंको चलानेमें लगे थे। यह दूसरी बात है कि बापूको अपने इन प्रयोगोंमें सौ फीसदी सफलता नहीं मिली, फिर भी अनेक विफलताओंके बीच वे सफल ही रहे और उनकी सफलताने मानवताको अलंकृत किया।

जब बापूके पास अपने कश्मीर गये हुए साथीके बारेमें लगातार चिन्ताजनक समाचार पहुंचने लगे, तो बापूने उन्हें एक मर्मस्पर्शी पत्र लिखा और एक क्रान्तिकारीकी भूमिकासे उनका उचित मार्गदर्शन किया। उन्होंने लिखा:

चि० . . .

. . . ने मुझे भयंकर बातें बताई हैं। तुम बहुत विषयासक्त हो, सो तो मैं समझ चुका था। किन्तु . . . ने जैसा वर्णन किया है, उस हद तककी खबर मुझे नहीं थी। तुम्हें . . . के द्वारा [illegible] की आशा छोड़ ही देनी चाहिये। तुमने उसे बहुत सताया है। अब पर दुर्दृष्टि डालोगे, तो [illegible]। लेकिन अगर तुम अपनी [illegible] भी न सको, [illegible] शिकार बन रहे हो, और [illegible]

विधवाके साथ करो, तो वह इष्ट होगा। इसे मैं एक पर दूसरी स्त्री करनेके समान नहीं मानूंगा। क्योंकि . . . के साथ तुम्हारा पति-पत्नी सम्बन्ध रहा नहीं है। तुम्हें . . . को अब मुक्त कर देना चाहिये। . . . के उदर-पोषणकी चिन्ता भी अब तुम्हें नहीं करनी चाहिये। जो करो, दृढ़ता-पूर्वक, हिम्मतपूर्वक और स्वच्छतापूर्वक करना। दुनियाको अथवा अपने आपको धोखा मत देना। जैसे हम हैं, दुनियाके सामने वैसे ही दिखाई पड़ें, तो उसमें कोई हर्ज नहीं। नया विवाह करने पर भी तुम जो काम कर रहे हो, सो करते रहना। तुम्हारा व्यभिचारी बनना बिलकुल सहा नहीं जा सकता। लेकिन तुम नया विवाह कर लोगे, तो मैं उसे सहन कर लूंगा।

कश्मीरवाले अपने साथीको ऊपरका पत्र लिखनेके बाद लगभग उन्हीं दिनों बापूने उनकी पत्नीको, जो उन दिनों साबरमतीके सत्याग्रह-आश्रममें ही रहती थी, अपने दौरेके किसी पड़ाव परसे नीचेका अद्भुत पत्र लिखा:

चि० . . .

तेरा स्मरण तो रोज ही करता रहा हूं, लेकिन पत्र आज लिख सका हूं। यह तो नहीं कहा जा सकता कि तेरी बातोंसे मुझे दुःख नहीं हुआ। फिर भी मुझको . . . का कसूर नहीं मालूम होता। वह स्वभावके विरुद्ध कैसे जा सकता है? वह खुशीसे नया विवाह करे। इसके लिए तू उसे आशीर्वाद दे सकती है। तुझे तो उसके पाससे हट ही जाना चाहिये। तुम अब पति-पत्नी नहीं

रहे । भाई-बहन हो । तुझे अपने पोषणका प्रबन्ध भी स्वतंत्र रीतिसे कर लेना चाहिये । . . . की गृहस्थी बसा देनेके बाद तू उसको भाईके रूपमें जानना । उसे सहायताकी आवश्यकता हो, तो सहायता करना । लेकिन यदि वह तेरे प्रति विकारमय रहे, तो उसे बहनके रूपमें तेरी मददका भी विचार छोड़ना चाहिये । जैसी तू अपनेको मानती है वैसी होगी, तो तेरा और . . . का कल्याण ही है । . . . निर्मल है । उसने कामको जीतनेका प्रयत्न तो खूब किया है । किन्तु इसमें उसकी हार हुई है । उसके लिए योग्य स्त्रीकी खोज करनेमें तू उसकी मदद करना । ब्रह्मचर्यके प्रचण्ड प्रयोगोंमें ऐसी घटनाएं घटती ही रहेंगी । हमें नीतिकी नई प्रतीत होनेवाली मर्यादायें खड़ी करनी होंगी । मुझे लिखा करना । अपने शरीरको संभालना ।

इस प्रकार बापूने अपनी तरफसे तो अपने इन दोनों साथियोंको जीवनके उदात्त मार्ग पर चलनेकी प्रेरणा दी, प्रोत्साहित किया और हर तरहकी अनुकूलता भी कर देनेकी अपनी तैयारी रखी, फिर भी बापू स्वयं जो चाहते थे वह नहीं हो पाया । जिन्होंने बापूकी इच्छाओंको, [illegible] बनाकर, आजीवन ब्रह्मचर्यसे रहनेका संकल्प किया था और जो परस्पर एक-दूसरेको पति-पत्नीके बजाय भाई-बहन माननेके लिए तैयार हुए थे, वे अन्त तक अपने इस नये पथ पर टिके नहीं रह सके । न पतिने नई पत्नी की और न पत्नी पतिको अन्त तक भाई मान सकी । कुछ समय बाद दोनोंने वैवाहिक जीवन शुरू किया । [illegible] ।

तरह ऊपर-ऊपरसे देखने पर तो यही लगता है कि बापू अपने इस प्रयोगमें हारे, विफल हुए। किन्तु गहराईसे सोचने पर उनकी यह हार ही हमें उनकी बड़ीसे बड़ी जीत मालूम होगी, इसमें सन्देह नहीं। यह आवश्यक नहीं है कि ऊंचा लक्ष्य सदा सिद्ध ही हो। नीचा लक्ष्य रखकर उसमें सफल होनेके बजाय ऊंचा लक्ष्य रखकर उसमें विफल होना कहीं बड़ी बात है। बापूको ऐसी विफलतामें जो आनन्द आता था, उसीमें उनकी महानता थी। वे केवल प्रयोगवीर ही नहीं, पराजयके भी वीर थे।

आज जब देशमें ब्रह्मचर्यके प्रति लोगोंकी आस्था उत्तरोत्तर क्षीण होती जा रही है, और हमारी लोकतन्त्रीय सरकार स्वयं परिवार-नियोजनके रूपमें ब्रह्मचर्यकी निष्ठाको लोक-जीवनसे मिटाने अथवा ढीला करनेके यत्नमें लगी है, ऐसे समय बापूके जीवनकी यह एक पावन कहानी हम सबके लिए प्रेरक और मार्गदर्शक बनेगी, इसमें सन्देह नहीं।

११

'क्या मैं अपना बुढ़ापा लजाऊं?'

एक दिनकी वात। शामका समय था। वापू सेवाग्रामसे वर्धा आये थे। लौटते समय महिला-आश्रमके रास्ते सेवाग्राम जानेको निकले। वीचमें आश्रमका एक फाटक पड़ा। फाटक वन्द था। उसमें ताला पड़ा था। दूरसे वापूको फाटककी ओर आते देखकर आश्रमकी वहनें चावी लेने दौड़ीं। इधर वापू कदम वढ़ाते हुए फाटकके पास आ गये। वापूके साथ जो वहनें सेवाग्राम जानेको निकली थीं, वे आगे वढ़नेको उतावली हुईं। वापूको भी जल्दी तो थी ही। प्रार्थनाके समयसे पहले उन्हें सेवाग्राम पहुंच जाना था। सेवाग्राम जानेवाली वहनोंमें एक कुमारी डॉक्टर सुशीला नय्यर भी थीं। आश्रमके फाटकसे सटकर दोनों ओर कंटीले तारोंका अहाता खिंचा था। श्री सुशीलावहन आगे वढ़ीं। कंटीले तारोंको जरा ऊपर उठाया और अपनी देह सिकोड़कर वे उस पार निकल गईं। उन्हें यों निकलते देखकर उनके साथकी एक दूसरी वहन भी उसी रास्ते उस पार पहुंच गईं। इतनेमें आश्रमकी एक वहन चावी ले आई, और उसने फाटक खोल दिया।

वापू अभी फाटकके इस ओर ही खड़े थे। जब उनके साथकी दो वहनें कंटीले तारोंके रास्ते उस ओर सड़क पर पहुंच गईं, तो वापू भी उसी ओर वढ़े। फाटक खुल चुका था। वापूको कंटीले तारोंकी ओर बढ़ते देखकर [illegible]

कहा: "बापू, फाटक खुल चुका है। आप फाटकके रास्ते ही बाहर जाइये न?" बापूने सुना और वे हंसकर बोले: "क्या मैं अपना बुढ़ापा लजाऊं? मेरे साथकी छोटी लड़कियां तो कंटीले तारमें से निकलकर जायें और मैं ६८ बरसका बूढ़ा खुले फाटकके रास्ते जाऊं?"

सुननेवाले सुनकर दंग रह गये! देखनेवालोंने देखा कि बापू कंटीले तारोंके पास पहुंच गये हैं, उनकी देह झुकी और सिमटी है और वे मुसकुराते हुए उस पार निकल गये हैं!

आश्रमकी छोटी-बड़ी बहनों सहित हम सबने बड़े कुतूहलके साथ बापूको कांटोंवाले तारमें से निकलते देखा। ज्यों ही वे निकलकर उस पार खड़े हुए, बहनोंने तालियां पीटी और हंसीके फव्वारे छूटे। बापू भी दिल खोलकर हंसे और अपने साथकी बहनोंको लेकर कदम बढ़ाते हुए सेवाग्रामकी ओर चल पड़े।

अभागा फाटक खुलाका खुला रह गया! कांटोंवाले तार अपने सौभाग्य पर फूल उठे। हम सब खड़े सोचते रहे। यों बात बहुत छोटी है, पर बापूने उसे बड़ेसे बड़ा रूप दे दिया। छोटोंका दिल कैसे रखा जाता है, सो बापूने हमें अपने अनूठे ढंगसे सिखा दिया।

बड़े आदमी इसी तरह लोहेको सोना बनाया करते हैं। छोटोंको बड़प्पन दिया करते हैं।

बापू बड़े थे। उनमें लोहेको सोना बनानेका गुण था। वे हमारे देशके जीते-जागते पारसमणि थे। अपने इसी गुणके कारण उन्हों[illegible] मर्द पैदा किये थे।

१२

दोनों बड़े !

बारिशके दिन थे। अगस्तका महीना था। उन दिनों बापू सेवाग्राममें रहते थे। महिला-आश्रम, वर्धाके आचार्य एक दिन अचानक बीमार हो गये। दस्त लगने लगे। उल्टियां होने लगीं। डॉक्टरोंने कहा — हैजा है। लोग चौकन्ने हुए। हैजेके बीमारको अलग रखा और इलाजकी अच्छी व्यवस्था की। बारी-बारीसे आश्रमके भाई-बहन अपने आचार्यकी सेवा-शुश्रूषामें पहुंचने लगे। डॉक्टरोंने अपनी सारी ताकत लगा दी। सेवकोंने जी-जानसे सेवा की। रोगीको घातक रोगसे मुक्ति मिली। पर आश्रमका भाग्य सीधा न था। आचार्य एक बीमारीसे छूटे, तो दूसरीने उन्हें घेर लिया। लगातार कई दिनों तक दिन-रात सजग रहकर साथियोंने उनकी सेवा-चाकरी की।

दुर्योगसे उन्हीं दिनों, उसी बीमारीसे, वर्धामें और भी कई कार्यकर्ता बीमार हुए। कुछ चल बसे। कुछ जी गये। बापूको इन सबकी बड़ी फिकर रहने लगी। वे रोज सवेरे-शाम बीमारोंको देखने आने लगे। चार मील चलकर आते थे और चार मील चलकर जाते थे। उन दिनों उन्होंने नंगे पैर चलनेका नियम ले रखा था। बरसातके दिन थे। मार्गमें कीचड़, कांटे, कंकर, पत्थर भरे [illegible]

थे। कई बार बापूको कष्ट हुआ; काँटे चुभे, कंकर लगे, पैर लहू-लुहान हुए, पर बापू थे कि वैसी हालतमें भी बीमारोंको देखने आते थे।

एक दिनकी बात। बापू सेवाग्रामसे चले। रातमें पानी बरस चुका था। दिनमें भी बादल छाये हुए थे। जब सेवाग्रामसे चले, तो ऊपर घने, काले बादल मंडरा रहे थे। बापू यों ही चल पड़े। न छाता लिया, न कम्बल। चलकर महिला-आश्रम आये। बादलोंका हाल यह था कि रह-रह कर बिजली चमक रही थी, जोरोंकी गड़गड़ाहट और गर्जना हो रही थी। ऐसा लगता था, मानो अभी बादल बरस पड़ेंगे और मूसलधार वर्षा होगी।

बापू आये। उन्होंने आश्रमके आचार्यको देखा। उनकी तबीयतके हाल पूछे। मीठा विनोद किया। हिम्मत और धीरजकी दो बातें कहीं। पथ्य-परहेजकी सूचना दी। सेवकोंको सजग किया, और फिर दूसरे बीमारोंको देखने चल पड़े। अकेले, साथमें छाता नहीं, पैरमें जूते नहीं। तेज गतिसे चले जा रहे हैं! ऊपर बादलोंकी हालत यह कि अब टूटे, तब टूटे। बादल जैसे दम साधकर बैठे थे। घनी घटा घुमड़ी थी। डर था कि कहीं पानी बरस पड़ा, तो बापू बुरी तरह भीग जायेंगे।

महिला-आश्रमसे कुछ दूर नवभारत-विद्यालय था और विद्यालयसे कुछ ही दूर हरिजन विद्यार्थियोंका छात्रावास। बापूको छात्रावास तक जाना था। वहां एक और साथी बीमार थे। शायद काकासाहब कालेलकर ही थे। बापू उन्हें देखने जा रहे थे। मोटर बुलाई थी। परन्तु वह समय

पर आयी नहीं, इसलिए बापू पैदल ही चल दिये थे। नव-भारत-विद्यालय तक पहुंचे ही थे कि सामनेसे मोटर आयी। खड़ी हुई। बापूने मोटर देखी। वे रुके और मोटर पर सवार हुए।

इधर बापूने मोटरमें पैर रखा और उधर उसी क्षण जोरोंकी वर्षा शुरू हुई। मूसलधार पानी बरसने लगा।

एक क्षण भी मोटर देरसे आती, तो बापू पानीमें नहा लिये होते।

पता नहीं, यह क्या चमत्कार था? पर उस दिनका वह दृश्य मुझे आज भी भूलता नहीं है।

एक बात सच मालूम होती है। जो सृष्टिके नियमोंका आदर करता है, जो प्रकृतिके अनुकूल होकर जीवन बिताता है, प्रकृति भी उसकी पूरी चिन्ता रखती है।

इस दृश्यने मुझे तो इसी सत्यके दर्शन कराये।

बापूको यदि प्रकृतिकी और चराचरकी चिंता थी, तो प्रकृतिको और चराचरको भी बापूकी उतनी ही चिंता क्यों न होती?

कहिये, दोनोंमें बड़ा कौन?

बापू बड़े या मांकी तरह बापूकी चिन्ता रखनेवाली प्रकृति बड़ी?

हम कहें — दोनों बड़े!

१३

'मुग्ध हुआ हूं'

वर्धाकी बात है। महिला-आश्रममें श्री नरहर लक्ष्मण आठवले आचार्यका काम करते थे। पूनाके रहनेवाले। अपनी मांके इकलौते बेटे। मांको ही अपना सर्वस्व समझनेवाले। पिता उनके बहुत छोटी उमरमें ही गुजर चुके थे। माने बड़ी मेहनतसे, मजूरी कर-करके, उन्हें पाला-पोसा। अपनी मांके वे एकमात्र आधार थे। सन् १९३८ का साल था। जुलाई महीनेकी ३१ तारीख। उस दिन अचानक वर्धाके कई होनहार और प्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्ता हैजेकी चपेटमें आ गये। उनमें से दो-तीन नौजवान तो थोड़े ही समयमें चटपट भी हो गये। उसी दिन आचार्य आठवले भी आश्रममें बीमार हुए। हैजेकी बीमारी थी। आश्रमवासियोंने अपनी सारी ताकत लगाकर उनका इलाज किया। सेवा-शुश्रूषा की। परिचारक दिन-रात आंखोंमें तेल डाले, एक पैर पर खड़े, सेवा-टहलमें लगे रहे। आखिर डॉक्टरोंने और परिचारकोंने हैजे पर विजय पायी। सबको लगा कि अब हमारे आचार्य आठवले बच जायेंगे। पर भगवानकी मरजी कुछ और ही थी। आचार्य एक बीमारीसे छूटे, तो दूसरीने उन्हें दबा लिया। उनका हृदय कमजोर पड़ गया। वह हैजेकी घातक बीमारीके श्रमको सह न सका। डॉक्टरोंने बहुतेरा इलाज किया, पर सफलता नहीं मिली।

सेवाग्रामसे बापू स्वयं प्रायः हर दिन आश्रमके आचार्यको देखने आने लगे। जब जाना कि हालत नाजुक है, तभी दौड़कर पैदल ही चले आये। उन दिनों बापूने नंगे पैर चलनेका नियम बना रखा था। धूप, बारिश, रात-बिरात, हर हालतमें वे नंगे पैर ही सब कहीं जाते-आते थे। आश्रमसे सेवाग्राम करीब ३॥–४ मील पड़ता है। बापू उन दिनों कभी-कभी बरसते पानीमें भी इतना रास्ता पैदल ही चलकर आया करते थे। बापू महिला-आश्रमके आचार्यको बहुत आदर और स्नेहकी दृष्टिसे देखते थे। वे इस आदर और स्नेहके पात्र थे भी। बाल-ब्रह्मचारी, विद्वान, निष्ठावान, सदाचारी, एकाग्र भावसे अपने काममें लगे रहनेवाले, सुलेखक, सुविचारक, जन्मजात शिक्षक, मनोवैज्ञानिक और मित्र, इन अनेक रूपोंमें आचार्य आठवले अपने क्षेत्रमें बहुत लोकप्रिय हो गये थे। घरमें माताजी उन्हें प्यारसे 'नाना' कहा करती थीं। आश्रममें भी हम सब उन्हें इसी नामसे अधिक जानते-पहचानते और पुकारते थे। जब नानाकी बीमारी कटती न दीखी और डॉक्टरोंको लगा कि अब नानाको बचाना मुश्किल है, तो तुरन्त पूना तार करके उनकी माताजीको वर्धा बुला लिया गया।

माताजी आईं। आते ही अपने पुत्रकी सेवा-चाकरीमें लग गईं। पुत्र यदि मातृभक्त था, तो माता पुत्रवत्सला थीं। दोनोंका एक-दूसरे पर अनन्य प्रेम, अनन्य श्रद्धा, अनन्य भक्ति और अनन्य आदर था। सब कुछ अलौकिक-सा था। नानाकी

माताजीको देखकर आश्रमवासी सब दंग रह गये । अपने एकमात्र पुत्रकी भयंकर और घातक बीमारीमें भी कभी एक क्षणके लिए उन्होंने अपना धैर्य नहीं छोड़ा । चुपचाप मुंहसे भगवानका नाम रटती रहतीं और मौतके मुंहमें पड़े अपने इकलौते बेटेकी सेवा-टहल प्रेमसे किया करतीं ।

११ अगस्त, १९३८की बात । उस दिन सवेरे ही पता चला कि नानाकी हालत गंभीर है। बापूको तुरंत खबर भेजी गई । बापू सारे काम छोड़कर दौड़े आये । आते ही नानाके कमरेमें गये । रोगीको नजदीकसे देखा । पुकारा । माथे पर हाथ रखा। कोशिश की कि वह अपनी बेहोशीमें से कुछ जागे, देखे, बात करे । पर नानामें अब इतना चेतन रहा नही था । बापू उनके पलंग पर बैठ गये । रोगीकी पीठ पर हाथ फेरने लगे । नानाकी मां वहीं बैठी थी । हालत गम्भीर थी। बापू नानाकी बूढी मांको हिम्मत बंधाने लगे । पर मांको इसकी जरूरत नही थी । मांका अपना तत्त्वज्ञान अनूठा ही था । बापूकी ढाढ़स बंधानेवाली बातें सुनकर मांने सहज भावसे कहा : "बापूजी, नाना अब भगवानके घर जा रहा है। मांके नाते मुझे इसका दुःख होना स्वाभाविक है । पर नानाने तो आपके कामके लिए अपना जीवन दे रखा था । ऐन जवानीमें इसने यह प्रण कर लिया था कि जब तक देशमें स्वराज्य नही हो जाता, मैं विवाह नहीं करूंगा ।

"यह उस समयकी बात है, जब पंजाबमें जलियांवाला बागका हत्याकांड हुआ था । तबसे इन १९ बरसोंमें नानाने एकनिष्ठ होकर स्वराज्यके लिए अपनेको खपाया है । नानाकी

यह देह आपके इस महान कार्यके लिए बहुत दुर्बल पड़ती थी। नाना आज इसे छोड़ रहा है। मुझे खुशी है कि अब वह भगवानसे अपने लिए नई और सशक्त देह पायेगा और फिर जन्म लेकर आपके ही काममें दूनी शक्तिसे लग जायेगा। भगवानका धन था, भगवानके पास जा रहा है। बापू, मैं दुःख किस बातका करूं?"

जिसने भी नानाकी मांके वे बोल सुने, वही गद्गद हो उठा। इकलौते बेटेकी मृत्युशय्या पर संसारके एक महान व्यक्तिसे जिस बूढ़ी, निराधार और प्रायः निरक्षर मांने यह बात कही, उसके अनुपम प्रेम, धैर्य और ऊंचे तत्त्वज्ञानको भला कौन पा सकता है? मांके इन शब्दोंने सबको अभिभूत कर दिया। बापू भी बहुत प्रभावित हुए। दिलासा देने चले थे, पर स्वयं बहुत बड़ा दिलासा लेकर उठे। मांके शब्दोंने नानाके जीवनकी महत्ताको बढ़ा दिया। मां-बेटेका एक नया पुण्य-पावन रूप सबके सामने आया। सब नतमस्तक हो उठे। धन्य! धन्य! कह उठे।

जब नानाने देह छोड़ी, पंछी उड़ गया, पिंजरा रह गया, तो आगेकी सारी व्यवस्था करवाकर बापू सेवाग्राम लौट गये। आश्रमकी बहनों और शिक्षकोंसे वे कहने लगे: "[illegible] न लगाओ। अपना-अपना काम करो। समय न गंवाओ। नाना मरे नहीं, मरकर जी गये हैं। उनके अनुरूप अपना जीवन बनानेकी कोशिश करो।"

सेवाग्राम पहुंचकर बापूने उसी दिन, ११ [illegible] १९३८ को, नानाकी माताजीके नाम [illegible]

मर्मभरा पत्र लिखा । नानाका जन्म काठियावाड़में हुआ था । इसलिए नानाने बचपनमें ही गुजराती सीखी थी । नानाकी मां भी गुजराती अच्छी तरह बोलती और समझती थी । बापूने इसी कारण उन्हें गुजरातीमें नीचे लिखा पत्र भेजा :

प्रिय भगिनी,

नाना गया एनो सोच तमे नही ज करता हो. तमारुं धैर्य जोई हुं तो मुग्ध थयो छुं. नानाना त्याग अने संयमने तमने जोई वधारे समजी शकुं छु. नानानु शरीर पड्युं. तेनो आत्मा तो सदाय महिला आश्रममां रहेशे अने अनेक बहेनोने प्रेरणारूप थशे.*

सेगांव, ११–८–'३८ मो० क० गाधीना वंदेमातरम्

बापूने अपने जीवन, अपने कार्य और अपनी प्रेरणासे लोगोंको किस तरह ऊंचा उठाया और बलिदानी बनाया, नानाका और उनकी मांका यह स्वरूप उसकी एक अनूठी मिसाल है ।

जय नाना ! जय नानाकी मां ! जय बापू !!

---

* प्रिय भगिनी,

नानाके जानेका सोच आप बिलकुल न करती होंगी । आपका धैर्य देखकर मैं तो मुग्ध हो गया हूं । आपको देखकर मैं नानाके त्याग और सयमको अधिक समझ सकता हू । नानाका शरीर छूटा। उनकी आत्मा तो सदा ही महिला-आश्रममें रहेगी और अनेक बहनोंके लिए प्रेरणारूप बनेगी ।

सेगाव, ११–८–'३८ मो० क० गांधीके वन्देमातरम्

१४

'न रज-भर छोटा, न रज-भर बड़ा'

उन दिनों बापू सेवाग्राम-आश्रममें रहते थे। सन् १९३९ का जमाना था। महाराष्ट्रमें बापूका विरोध करनेकी एक तूफानी लहर पैदा हुई थी। मराठी भाषाके अनेक समाचारपत्रों, साप्ताहिकों और पत्र-पत्रिकाओं तकमें बापूके विरुद्ध बहुत कुछ बुरा-भला लिखा जाने लगा था। बापूको जनताकी निगाहमें गिरानेकी हर तरह कोशिश की जा रही थी। उन पर नाना प्रकारके आरोप और अभियोग लगाये जाते थे। लिखा जाता था और कहा जाता था कि उनके जैसा स्वार्थी, अप्रामाणिक, ढोंगी और चरित्रहीन आदमी दूसरा कोई है ही नहीं। मनुष्यके दुर्गुणोंको कलमके सहारे जितना कालेसे काला चित्रित किया जा सकता था, उतना सब करनेकी पूरी कोशिश उन दिनों महाराष्ट्रके कुछ लेखक, प्रचारक, विद्वान और विचारक कहे जानेवाले लोग कर रहे थे।

संयोगसे उन्हीं दिनों मध्यप्रान्तके तत्कालीन कांग्रेसी मंत्रि-मंडलसे डॉ० खरेको हटना पड़ा। वे उन दिनों मध्यप्रान्तकी सरकारके प्रधानमंत्री थे। उनके प्रधानमंत्री-पदसे हटने पर महाराष्ट्रके गांधी-विरोधी मित्रोंको बापूके विरुद्ध प्रचार करनेका एक और बड़ा साधन मिल गया। उन्होंने इस घटनाके जोरसे यह सिद्ध करनेकी कोशिश की कि गांधी महाराष्ट्रका और महाराष्ट्रियोंका दुश्मन है।

उन्हीं दिनों वर्धामें कुछ लोग अचानक हैजेसे बीमार पड़े। जिस दिन ये लोग बीमार हुए, उस दिन इनमें से अधिकांशने खजूरका ताजा रस, जिसे 'नीरा' कहते हैं, पिया था। शराब-बन्दी-आन्दोलनके सिलसिलेमें बापूने नीरापानके प्रचारको बढ़ावा दिया था। संयोगसे उस दिन वर्धामें जिन लोगोंने नीरा पी थी, उनमें अधिकांश महाराष्ट्री थे। जो बीमार हुए उनमें से दो-तीन तो कुछ ही घण्टोंमें हैजेके शिकार हो गये। जो मरनेसे बचे, उनको भी मौतके मुहमें वापस लानेमें डॉक्टरों और परिचारकोंको दिन-रात एक कर देना पड़ा। महाराष्ट्रके गांधी-विरोधी मित्रोंने इस आकस्मिक दुर्घटनामें भी बापूके महाराष्ट्र-द्वेषका दर्शन किया और माना कि उन्होंने नीरा पिलाकर कुछ अच्छे, होनहार महाराष्ट्री तरुणोंको और विद्वान सेवकोंको मौतके घाट उतारनेका एक भयानक षड्यंत्र रचा था!

संयोगसे उन्हीं दिनों पूनासे 'प्रसाद-दीक्षा' नामकी एक मराठी पुस्तक प्रकाशित हुई। इस पुस्तकमें बापूके उन पत्रोंका मराठी अनुवाद छपा था, जो उन्होंने साबरमती आश्रमकी अपनी एक महाराष्ट्री शिष्या कुमारी प्रेमाबहन कंटकको समय-समय पर लिखे थे। बापूका जीवन जितना बाहरसे निर्मल था, उतना ही अंदरसे भी उसे निर्मल रखनेकी वे अपनी तरफसे पूरी-पूरी कोशिश करते थे। बापूने अपनी इस महाराष्ट्री शिष्याको जो पत्र लिखे थे, उनमें उन्होंने अपना दिल खोलकर रख दिया था। मनमें चोर रखकर कभी कोई बात वे साधारणतः लिखते-कहते नहीं थे। इन

पत्रोंमें उन्होंने स्त्री-पुरुषोंके वैवाहिक जीवनके बारेमें भी अपने अनुभवकी कुछ बातें निःसंकोच भावसे लिखी थीं। महाराष्ट्रके गांधी-विरोधी मित्रोंने इसका भी विरोध किया और इन पत्रोंका हवाला देकर बापूको जितना बदनाम किया जा सकता था, उतना बदनाम करनेमें अपनी ओरसे कोई कसर नहीं रखी।

इस प्रकार महाराष्ट्रके गांधी-विरोधी मित्रोंको बापूके विरुद्ध विषैला प्रचार करनेकी जो संधि इन तीन घटनाओंने दी, उसके कारण महाराष्ट्रके अनेकानेक सुशील, सुविचारी और सुसंस्कृत भाई-बहनोंके दिल बहुत ही व्यथित हुए। वे निश्चित रूपसे जानते थे कि उनके प्रान्तमें कुछ लोगों द्वारा बापूके बारेमें जो प्रचार किया जा रहा है, वह बिलकुल झूठा, घृणित और राग-द्वेषसे प्रेरित है। पर उनकी समझमें नहीं आता था कि वे इस सारे जहरीले प्रचारकी रोकथामके लिए स्वयं क्या करें?

ऐसे ही लोगोंमें बम्बईकी स्व० श्रीमती अवन्तिकाबाई गोखले भी थीं। वे बापूको दक्षिण अफ्रीकाके जमानेसे जानती थीं। बापूके साथ एक अरसे तक रह चुकी थीं और उनका बताया काम भी कर चुकी थीं। बापूके प्रति उनकी भक्ति बहुत गहरी थी। उन्होंने मराठीमें बापूकी एक सुन्दर जीवनी भी लिखी थी। उनका नियम था कि हर साल बापूके जन्मदिन पर, उनकी सेवामें, अपने हाथ-कते सूतकी [illegible] लिए भेजना और उनके आशीर्वाद मांगना। सन् १९३९ के अक्तूबर महीनेमें बापूका जन्मदिन पड़ा। श्रीमती अवन्तिकाबाई गोखलेने हर सालकी तरह इस साल भी अपनी [illegible]

धोतियां बापूके लिए भेजीं और साथके पत्रमें अपने दिलकी गहरी व्यथा प्रकट करते हुए बापूका ध्यान महाराष्ट्रमें चल रहे गांधी-विरोधी प्रचारकी ओर आकर्षित किया। उन्होंने लिखा: "आपके विरोधमें मराठी-जगतके पत्रों और पत्रिकाओंमें इधर जैसा विषैला और झूठा प्रचार हो रहा है, उसे और अधिक सहनेकी शक्ति अब मुझमें रही नहीं है। मन अत्यंत दुःखी है। आप बिलकुल मौन हैं। न कुछ लिखते हैं, न बोलते हैं। हमें रास्ता सूझ नहीं रहा है। कोई ऐसा उपाय होना चाहिये, जिससे यह विष और अधिक न फैले।"

बापूने श्रीमती अवन्तिकाबहनके व्यथा-भरे पत्रका जो उत्तर भेजा, उसमें बापूके जीवनकी सच्ची महानता प्रकट हुई। उन्होंने अपने पत्रमें जो लिखा, उसका आशय कुछ इस प्रकारका था:

आपका पत्र मिला। वस्त्रकी भेंट भी मिली। महाराष्ट्रमें वहांके कुछ मित्रों द्वारा मेरे विषयमें जो विरोधी प्रचार हो रहा है, मैं उससे बेखबर नहीं हूं। लेकिन मैं करूं क्या? जिस तरह महाराष्ट्रके कुछ मित्र मेरी घोरसे घोर निंदा करनेमें रस ले रहे हैं, उसी तरह इस देशमें कुछ मित्र ऐसे भी हैं, जो मेरी बहुत बढ़चढ़ कर प्रशंसा भी करते रहते हैं। निंदा करनेवालोंकी निंदासे मैं क्यों मुरझाऊं? और प्रशंसा करनेवालोंकी प्रशंसासे क्यों फूलूं? मैं निन्दा करनेवालोंकी निन्दासे न तो घटता हूं और न प्रशंसा करनेवालोंकी प्रशंसासे बढ़ता ही हूं। जैसा भी हूं, वैसा हूं। न रज-भर छोटा, और न रज-भर

बड़ा। अपने सिरजनहारके सामने आदमी सच्चा बना रहे, तो फिर उसे कहीं कोई खटका रहे ही नहीं।

बापूके इस पत्रमें मानव-समाजके सेवकोंके लिए अनन्त प्रेरणा भरी पड़ी है। मानव-जीवनकी एक ऊंचीसे ऊंची भूमिकाका दर्शन हमें इसमें होता है। बापूकी महानता यहां अपने असल रूपमें प्रकट हुई है। बापू अपने जीवनमें नीलकंठ बनकर व्यक्ति, समाज और राष्ट्रके जीवनमें से निकलनेवाले हलाहल विषको पीने और पचानेमें किस प्रकार सफल हुए और किस कारण सफल हुए, उसका ठीक जवाब हमें बापूके इस पत्रमें मिलता है। बापूके जीवनका यह अनूठापन उनकी अपनी ही एक विभूति थी। बापू बापू ही थे!

परिशिष्ट

मेरा दुःख, मेरी शर्म

इस अध्यायको लिखने या न लिखनेके सम्बन्धमें लगातार विचार करनेके बाद आखिर में इस नतीजे पर पहुंचा कि न लिखना अधर्म होगा। सत्याग्रह-आश्रम — उद्योग-मंदिर — को बहुतसे मित्र पवित्र स्थान समझते हैं। कई अपने प्रियजनोंकी मौतके बाद उनकी पवित्र स्मृतिमें खादी वगैराके लिए द्रव्य भेजते हैं। मैं उसे स्वीकार भी करता हू। फिर भी इस मन्दिरमें बड़े-बड़े पाप प्रकट हुए हैं। मन्दिरमें रहनेवालोंको तो मैं इस बातकी खबर दे चुका हू, लेकिन इतना ही काफी नही है। 'हिन्दी नवजीवन' के पाठकोंके साथ मेरा सम्बन्ध धार्मिक है। इस सम्बन्धके पीछे मेरी और मुझसे सम्बन्ध रखनेवालोंकी पवित्रता छिपी हुई है। मैंने कई बार लिखा है कि पाप छिपाया नही जा सकता। मेरे पास तो छिपानेके लिए कुछ है ही नही। मन्दिरमें जो पाप प्रकट हुए हैं, उनकी खबर उससे सम्बन्ध रखनेवालोंको दे देना उचित है, आवश्यक है। यही सोचकर पाठकोंके सामने उन्हें दीनतापूर्वक उपस्थित करता हूं।

मेरे प्रिय भतीजे — स्व० मगनलाल गाधीके बडे भाई — छगनलाल गाधी बरसों पहलेसे चोरी करते हुए पकड़े गये है। उन्हें मैंने अपने पुत्रके समान पाला और बचपनसे अपने पास रखा है। अगर उन्होंने खुद होकर चोरीकी बात कबूल कर ली होती, तो मुझे इतना दुःख न होता। लेकिन यह चोरी तो आश्रमके इसी नामवाले जाग्रत मन्त्रीने अनायास पकड़ ली। इन पुत्रके समान भतीजेने इसे छिपानेके लिए जो कोशिश की थी, वह बेकाम हुई। फिर तो उनके पछतावेका पार न रहा। अब तो वे गला फाड़कर बुरी तरह रोते हैं। फिलहाल उन्होंने अपनी खुशीसे मन्दिर भी छोड़ दिया है, लेकिन मैं यह आशा लगाये

वैठा हूं कि चित्त शुद्ध करनेके वाद वे फिर लौटेंगे। अगर वे शुद्ध हो जायेंगे, तो मन्दिर उनका स्वागत करेगा। उन्होंने जो चोरियां की हैं, वे सव न कुछ-सी, थोड़ेसे पैसोंकी और छोटी, हलकी चीजोंकी हैं। चोरीकी रकमका खयाल करते हुए मैंने इसे छगनलाल गांधीका एक रोग माना है। इस चोरीसे मन्दिरको आर्थिक नुकसान हुआ हो सो नहीं। छगनलाल गांधीने लगभग रु० १०,००० वचाये थे। कैसे, सो तो अभी नहीं वताऊंगा। कुछ ही महीने हुए, उन्होंने यह रकम मेरे कहनेसे मन्दिरको दे डाली थी। इस दानमें उदारता नहीं थी, सिर्फ धर्म-पालन था। अपरिग्रहका व्रत पालन करनेवालोंके पास अपनी निजकी मिल्कियत नहीं होती। छगनलालके पास यह देखी गई। यह वात मुझे खटकी। छगनलालने, उनकी पत्नीने, उनके दोनों लड़कोंने कवूल किया कि यह धन रखा नहीं जा सकता। इस कारण यह सव रकम मन्दिरको मिली। मैं मानता हूं कि अव छगनलालके पास उनके पिताजीकी मिल्कियतके हिस्सेके सिवा कुछ भी नहीं रहा है। जव मैं छगनलाल गांधीकी तीस वरसकी सेवाका और उनकी सरलताका विचार करता हूं, तो इस चोरीके कारणको समझ नहीं सकता। प्रकृति वलीयसी है।

यह तो मेरी शर्मकी एक वात हुई। अव दूसरी सुनिये। 'आत्मकथा' में मैंने कस्तूरवाईकी वहुत तारीफ की है। मेरे जीवनके वड़े-वड़े परिवर्तनोंमें इच्छासे या अनिच्छासे उसने मेरा साथ दिया है। मैं मानता हूं कि उसका जीवन पवित्र है। उसने समझ-बूझकर नहीं, लेकिन केवल पत्नीधर्मका खयाल करके अच्छा त्याग किया है। मेरे त्यागमें उसने रुकावट नहीं डाली है। मेरी वीमारीमें मेरी सेवा करके उसने मेरा मन चुराया है। उसे कष्ट देनेमें मैंने कोई कमी नहीं की है। मैं यह कह सकता हूं कि उसने ब्रह्मचर्यके पालनमें न केवल मेरी मदद की है, वल्कि मेरी रक्षा भी की है। इन गुणोंको छिपानेवाले दोष भी उसमें हैं। उसने पत्नीधर्म समझकर इतना त्याग तो किया है, फिर भी उसमें कुछ ऐसा क्षुद्र मोह रह गया है, जो समझमें नहीं आता। इसी कारण पिछले एक साल या उससे कुछ पहले इधर-उधर लोगोंके [illegible] लिये हुए १००-२०० रु० उसने रख रखे थे। [illegible]

कोई उसके निजके लिए भी कुछ दे जाय, तो उसे भी वह रख नहीं सकती। इस कारण ऊपरकी इकट्ठी की गई रकम चोरीकी रकम थी। उसकी और मन्दिरकी खुशनसीबीसे एक बार मन्दिरमें चोर आये। उन्हें तो कुछ नहीं मिला, लेकिन इस बहाने कस्तूरबाईकी चोरी प्रकट हो गई। उसे शुद्ध पश्चात्ताप हुआ, लेकिन वह क्षणिक सिद्ध हुआ। उसका सच्चा हृदय-परिवर्तन नहीं हुआ था; पैसा जोड़नेका मोह अभी छूटा नहीं था। कुछ दिन पहले कुछ अपरिचित भाई उसे ४ रु० भेंटके नामसे दे गये। नियमानुसार इन रुपयोंको कार्यालयमें जमा करानेके बदले उसने अपने पास रख छोडा। एक जिम्मेदार आश्रमवासीने यह सब देखा था। उनका धर्म तो यह था कि वे कस्तूरबाईको सावधान कर देते, लेकिन झूठी मर्यादाके कारण वे इस पापके साक्षी बने रहे। छगन-लाल गांधीके किस्सेके बाद मन्दिरवासियोंकी आंखें खुली। कस्तूरबाईकी चोरीके साक्षीने छगनलाल जोशीको खबर दी। जोशी कस्तूरबाईके पास कांपते-कांपते पहुचे। कस्तूरबाई समझ गई। उसने दीनतापूर्वक रुपये दे दिये और वचन दिया कि आगेसे ऐसा नहीं होगा। मैं मानता हूं कि उसका पछतावा सच्चा है। लेकिन अब अगर पहले किया हुआ कोई दूसरा पाप प्रकट हो, या भविष्यमें ऐसा कोई पाप करने पर वह प्रकट हो जाय, तो कस्तूरबाईने प्रतिज्ञा की है कि वह मुझे और मन्दिरको छोड देगी। मन्दिरने उसके पश्चात्तापको स्वीकार किया है। अब वह मन्दिरमें एक निर्दोषकी तरह रहेगी और अगर लोग निभा लेंगे तो समय-समय पर मेरे साथ मुसाफिरी भी करेगी।

अब तीसरी घटना सुनिये। मन्दिरमें (आश्रममें) तीन साल पहले एक विधवा बहन रहती थी। हम सब उसे पवित्र मानते थे। उन्हीं दिनों आश्रममें एक नौजवान भी रहते थे। उनका पालन-पोषण किसी अनाथालयमें हुआ था। उन्हें भी हम सब अच्छा समझते थे। उस समय वे कुआरे थे। उक्त विधवा बहनके साथ वे पतित हुए। यह किस्सा वैसे बहुत पुराना हो चुका है, लेकिन जिस आश्रममें ब्रह्मचर्य-पालनके लिए भगीरथ प्रयत्न किये जाते हैं, उसमें इस तरहकी गन्दगी, ऐसी सड़नका दीख पड़ना बड़ा करुणाजनक है।

यही आश्रम है, यही मन्दिर है!

मित्र और अनजान-अपरिचित भोले पाठक मन्दिरका और मेरा त्याग करें, तो दुहेरी भलाई हो। मैं छूटूं, वे छूटें। मेरा बोझ हलका हो। लेकिन दुनियाकी कठिन पहेलियां इस तरह सहज ही नहीं सुलझ सकतीं। इस पहेलीको हल करनेका एक तरीका तो यह है कि मन्दिरमें रहनेवाले पवित्र स्त्री-पुरुष मुझे छोड़ दें। दूसरे, अगर मन्दिरमें रहनेवाले सारे अपवित्र नर-नारी भाग जायं, तो भी मेरे विचारमें सुन्दर परिणाम निपजे। मैं भाग जाऊं, यह तो और भी अच्छा है; सोनेमें सुगंध है। लेकिन इनमेंकी कोई एक बात भी अभी सम्भव नहीं।

पाठक कृपाकर इन बातों पर विश्वास करें। यह समझना चाहिये कि ये पाप मेरे पापोंकी प्रतिमाएं — प्रतिमूर्तियां हैं। ऊपर जो कुछ मैंने लिखा है, वह इस उद्धत विचारसे नहीं लिखा कि 'मैं अच्छा हूं, मेरे साथी खराब हैं।' मुझे पक्का विश्वास है कि मेरे हृदयकी गहराईमें छिपी हुई अनेक कमजोरियां ही इस तरह फोड़ोंके रूपमें फूट पड़ती हैं। मैंने कभी सम्पूर्णताका दावा नहीं किया है। आश्रममें जो पाप होते हैं, वे मेरे पापोंकी झाईं — प्रतिध्वनि हैं। मैं तो यही कह सकता हूं कि मैं अपने पापोंको नहीं जानता। अनन्त विकार-जगतमें इतने पाप करके मैं आसपासकी हवाको गन्दा करता होऊंगा। कौन जानता है? 'महात्मा' पद मुझे हमेशा शूलके समान चुभा है। आज तो मैं उसे अपने लिए एक गाली समझ रहा हूं। लेकिन मैं कहां जाऊं? क्या करूं? निकल भागूं? आत्महत्या कर लूं? भूखों मर जाऊं? आश्रममें ही गड़ जाऊं? सार्वजनिक कामोंके लिए अथवा अपने पेटके लिए एक भी कौड़ी किसीसे इनकार कर दूं? कोई बात इनमें से ऐसी नहीं, जिसे अभी करनेकी इच्छा हो, हिम्मत भी नहीं है।

मैं इतना आशावादी हूं कि दूसरे भले ही मेरी बात न मानें, लेकिन अगर अकेले मन्दिरमें रहनेवाले ही मन, वचन और कर्मणा मेरा कहना स्वीकार कर लें, तो भी मैं अपनी सफलता समझूंगा। [illegible] आशा रखता हूं। मैं अपने पापोंको देखने और उन्हें दूर करनेके लिए हमेशा तैयार रहता हूं। इस कारण [illegible] दोषोंको [illegible]

मैं यह आशा रखकर जी रहा हूं कि आश्रम अपने नामकी योग्यताको अभी भी सिद्ध करेगा और जिसमें मन्दिर मिटकर आश्रम बनेगा। इसी कारण अभी तो मैं यही विचार रखता हूं कि जैसे-जैसे कमजोरियां प्रकट होती जायं, वैसे-वैसे मैं उन्हें जाहिर करता जाऊं और मन्दिरको निर्माता-बनाता रहूं।

प्रभुकी प्रीतिके लिए जो काम शुरू किया है, उसे उसकी प्रेरणाके अभावमें मैं कैसे छोड़ सकता हूं? जिस दिन प्रभु मुझसे यह काम छुड़ाना चाहेंगे, उस दिन वे लोगोंमें मेरा निरस्कार करनेकी बुद्धि पैदा करेंगे। उस समय भी मेरा हृदय तो उनसे 'मैं तेरा और तू मेरा' ही कह सकेगा। इसी आशा पर मैं जी रहा हूं।

अपनी इसी पापी अपूर्ण संस्थाके द्वारा मैं प्रभुसे मिलनेकी आशा रखता हूं। इस संस्थाको मैं अपनी अच्छीसे अच्छी कृति मानता हूं। मैं कहता रहता हूं कि यह संस्था मुझे मापनेका गज है। इन पापोंके प्रकट हो जाने पर भी मेरी इस कल्पनामें कोई फेरफार नहीं हुआ है। हो सकता है, यह मेरा निरा भ्रम हो, सयानेपनके बदले पागलपन हो। ऐसी दशामें

रजत सीप महुं भास जिमि, जथा भानु कर बारि।

जदपि मृषा तिहुं काल सोइ, भ्रम न सकइ कोउ टारि।।

सीपमें चांदीका और सूर्यके तापमें जलका भ्रम होना सर्वथा झूठा है, फिर भी अज्ञानी आदमीको वह सच्चा ही मालूम होता है। इस भ्रमको सिवा ज्ञानके और कोई नहीं मिटा सकता।

मोहनदास करमचंद गांधी

हिन्दी नवजीवन, ११-४-'२९, पृ० २६८-६९